पूर्व-बुनियादी

शान्ता नारूलकर

अखिल भारत सर्व-सेवा-संघ-प्रकाशन
रा ज घा ट, का शी

प्रकाशक :
अ० वा० सहस्रबुद्धे,
मंत्री, अखिल भारत सर्व-सेवा-संघ,
वर्धा (बंबई राज्य)

मुद्रक :
बलदेवदास,
संसार प्रेस,
काशीपुरा, बनारस

चौथी बार : १०,०००
कुल छपी प्रतियाँ : १५,०००
जनवरी, १९५७
मूल्य : आठ आना

अन्य प्राप्ति-स्थान
अखिल भारत सर्व-सेवा-संघ-प्रकाशन

काकावाड़ी
वर्धा

गांधी-भवन
हैदराबाद

प्रस्तावना

छोटे बच्चों की तालीम के बारे में शांता बहन ने अपने जो विचार प्रदर्शित किये हैं, वे चिंतन करने योग्य हैं। अक्सर इस विषय का विचार शहरियों के खयाल से अभी तक किया गया है, लेकिन गांधीजी ने तालीम की व्यापक दृष्टि सामने रखी, जिसमें सबकी और जीवनभर की तालीम का समावेश था और उसमें खास करके देहातियों का विशेष खयाल था। वही दृष्टि लेकर शांता बहन के ये विचार हैं।

इसमें अनुभव से काम लिया गया है, यानी तालीम का प्रत्यक्ष तजरुबा करने के बाद जो विचार सूझे हैं, वे रखे गये हैं। इसीलिए इसका एक महत्त्व है। वैसे पूर्व-पद्धतियों का भी सार-ग्रहण इसमें है, लेकिन सब कुछ होते हुए भी उसका मुख्य महत्त्व यही है कि ये विचार प्रयोगजन्य हैं और अनुभवनिष्ठ हैं।

जो विचार प्रयोगजन्य और अनुभवनिष्ठ होते हैं, वे हमेशा दूसरों के प्रयोगों और अनुभवों के लिए भी गुंजाइश रखते हैं, अर्थात् उनमें आग्रह नहीं होता। वे केवल सुझावरूप होते हैं। वैसे ही ये हैं।

मेरी दृष्टि में तो छोटे बच्चों की तालीम, जिसको हम पूर्व-बुनियादी तालीम कहते हैं, कुटुंबों में ही होनी चाहिए। माता-पिता ही बच्चों के प्रथम गुरु हैं और दूसरे गुरुओं से उनका अधिकार भी श्रेष्ठ है, बशर्ते कि शिक्षण की कुछ काबिलियत वे रखते हों। अभी वैसी स्थिति नहीं है, इसीलिए पूर्व-बुनियादी तालीम की योजना करनी पड़ती है और उसका ढाँचा भी बनाना पड़ता है। लेकिन आदर्श तो यही होगा कि बुनियादी तालीम और प्रौढ़-शिक्षा का देश में इतना फैलाव हो कि हरएक कुटुम्ब एक पाठशाला बने और जैसे स्मृतिकारों ने सिखाया है, गर्भाधान से ही बच्चे की शिक्षा का आरंभ हो। इस आदर्श को जब तक नहीं पहुँचे हैं, तब तक माता-पिताओं के प्रतिनिधि बनकर दूसरों को यह काम करना है। उसकी एक दिशा इन विचारों में सूचित है। परिस्थिति के मुताबिक हर जगह उसमें हेरफेर हो सकता है। उसी दृष्टि से पढ़नेवाले इसे पढ़ेंगे।

परंधाम,
पवनार २५-२-'४६

विनोबा

अनुक्रम

पूर्व-बुनियादी

पहला खण्ड

योजना

अहिंसात्मक और स्वावलम्बी समाज की स्थापना के लिए बापू की नयी तालीम का आश्रय लेना होगा। भारत में खेती और गाँवों का बहुत बड़ा स्थान है, परन्तु उसीके साथ गरीबी और अविद्या भी लिपटी हुई है। ऐसी हालत में कोई व्यापक और सफल शिक्षण-योजना तैयार करने के लिए तो खासकर बापू की नयी तालीम का सहारा लेने में ही कल्याण दीखता है। परन्तु इस नयी तालीम की इमारत पूर्व-बुनियादी तालीम की नींव पर ही खड़ी होती है। इस भाग में इन्हीं बातों पर विचार किया गया है।

विषय-प्रवेश

: १ :

भारत में शिक्षा का एक विशेष स्थान है। भारत के स्वतंत्र होने के बाद से तो लोगों के विचार में यह बात विशेष रूप से आ रही है। वैसे तो आज तक जितना शिक्षा-कार्य हुआ है, वह प्राथमिक कक्षा से ही शुरू हुआ और सो भी अधिकतर 'थ्री आर्स'* के सिद्धान्त से ही शुरू हुआ, परन्तु अब छोटे बच्चों के बारे में सोचने का समय आ गया है। क्योंकि वे ही देश के आधारस्तम्भ हैं, यह बात सभी शिक्षा-शास्त्री समझ रहे हैं। जब पू० बापू ने बुनियादी तालीम पर लिखना शुरू किया, तब कई लोगों ने इस पर आपत्ति उठायी कि शिक्षा का आरंभ तो सात वर्ष से नीचे के बच्चों से शुरू होना चाहिए। बात ठीक थी और उसी तरह हुआ। उन्होंने कहा कि शिक्षा का आरंभ तभी से शुरू किया जाय, जब माँ के पेट में बालक आये। विनोबा दो कदम आगे बढ़े। उन्होंने एक दिन कहा कि बालक स्वयं अपनी विशेषता रखता है और अपने माता-पिता चुनकर उनकी गोद में पैदा होता है। इसी कारण गुणी

---

* 'थ्री आर्स' का भावार्थ है लिखना, पढ़ना और अंकगणित। यानी अंकज्ञान और अक्षरज्ञान तक ही शिक्षा का सीमित रहना। इसे अंग्रेजी में रीडिंग, राइटिंग और अर्थमेटिक कहते हैं।

माता-पिता के बालक भी कई अलग-अलग गुण दिखाते हैं। इस गुण की रक्षा यदि शुरू से हो, तो ये बालक बड़े ही गुणवान् और विचारशील होंगे।

भारत एक-एक कदम आगे बढ़ रहा है, जैसा हम देखते हैं कि जनता से बराबर माँग आ रही है कि हमारे बालकों की शिक्षा जरूरी है। अब हमें यह विचार करना है कि हम उनके सामने क्या रखें। एक निरी नकल या कुछ प्रयोग के बाद जो स्वरूप हमने पाया है वह! हमारे शहरों में अनेक बाल-शिक्षण-संस्थाएँ हैं। उनके अनेक पाश्चात्य प्रकार हैं। उनके बारे में हमें चिंतन नहीं करना है। वे अपने में अच्छे हैं। 'नर्सरी', 'किंडर-गार्टन', 'माण्टेसरी' पद्धतियों ने जब जन्म लिया था, तब हरएक अपने क्षेत्र में विशेषता लेकर ही आयी। उन्होंने अपने जगत् में क्रान्ति लाकर बालक की विशेषता की तरफ बड़ों का ध्यान खींचा और बालक को समाज में विशेष स्थान दिलाया। भारत में ये तीन पद्धतियाँ अधिक चलती हैं। इन्हींके आधार पर बाल-वाड़ियाँ या बाल-मन्दिर चलाये जा रहे हैं। परन्तु हमें तो बालक को केवल शाला के स्थान पर ही नहीं देखना है। एक बालक, जिसे भरपेट भोजन नहीं मिलता, जो दाने-दाने को तरसता है, उसके सामने उसका घर एक समस्या है। तब चंद घंटे की बालवाड़ी और उसके साधन उसके लिए खट्टे अंगूर ही हैं। कोई नयी पद्धति जब जन्म लेती है, तब उसके सामने समाज का कुछ भावी चित्र बना रहता है। जो पद्धतियाँ आनेवाले समाज की माँगें पूरी नहीं कर पातीं, वे पुरानी कहलाती हैं। अपने समय में वे कितनी ही उपयोगी प्रतीत होती हों, परंतु जमाने की माँग और नये समाज की रचना के अनुकूल वातावरण की झलक उनमें न दिखाई दे, तो वे सफल नहीं कही जायँगी।

विनोबाजी नयी तालीम का जिक्र करते समय हमेशा उसे

'नित्य नयी तालीम' कहते हैं, क्योंकि नयी तालीम भी पुरानी हो सकेगी। परन्तु नित्य नयी तालीम कभी पुरानी हो नहीं सकती। वह जीवन की अनुभूति है।

'पूर्व-बुनियादी' नयी तालीम का पहला हिस्सा है और देखने में छोटा है, परन्तु इसकी व्यापकता बहुत अधिक है; क्योंकि यह जीवन की नींव है, जीवन का आरंभ तथा भविष्य का भी आरंभ है। बालक तथा माता की रक्षा तथा शिक्षा को इसमें मूलभूत अथवा जन्मसिद्ध हक माना गया है। बालक जन्म के साथ कुछ शक्तियाँ लेकर आता है, इसी कारण वह माता-पिता का खिलौना मात्र नहीं है। बापू का यह कहना कितना सत्य है कि बालक ही माता-पिता का सच्चा गुरु है! बालक के सामने झूठ नहीं बोल सकते, बहाना नहीं कर सकते और स्वार्थी नहीं बन सकते। क्योंकि उसकी आँखें हमारे सभी कर्मों को निहारती रहती हैं। भगवान् के रूप में वह हमारे कार्यों की जाँच करता है। जैसे घर का वातावरण बालक को आगे बढ़ने में मदद करता है, उसी तरह जब बालक कुछ सीखता है, तो माता का भी विकास होता है—यह वास्तविकता है। हमें इसे न भूलना चाहिए।

हम नव-निर्माण-कार्य में लगे हैं। हम नव-जीवन का आरंभ देख रहे हैं। हमारे देहात जाग रहे हैं और शहर में भी नव-जीवन का आरंभ हो रहा है। ऐसे समय हमारे शिक्षा-शास्त्रियों का क्या फर्ज है? नव-जीवन का उगता सूर्य हम देख रहे हैं, परन्तु हमारी जीवन-दृष्टि अभी धुँधली है। आज भी हम देख रहे हैं कि शाला और घर के वातावरण में अन्तर बढ़ता ही जा रहा है। बालक के घर या समाज को हम मिटा नहीं सकते। हम चाहें कि वह घर से दूर और शाला के वातावरण में ही पले, तो वह अस्वाभाविक है। हमें तो घर और शाला, दोनों के वातावरण को स्नेहमय और बालक के व्यक्तित्व के लिए

पोषक बनाना है। यदि घर का वातावरण बालक के व्यक्तित्व में बाधा डालनेवाला है, वह स्नेहमय और बालक के लिए पोषक नहीं है, तो ऐसे वातावरण में वह कुछ घंटे ही क्यों न रहे, उसके मानसिक विकास तथा शारीरिक स्वास्थ्य में बाधा अवश्य उपस्थित होगी। इसलिए बालक के विकास के बारे में सोचते समय माता-पिता को अलग नहीं रख सकते, घर को नहीं छोड़ सकते।

आज की शिक्षा-पद्धति यह महसूस करती है कि शिक्षा की दृष्टि से बालक के साथ माता-पिता का संबंध रहना उपयुक्त है। विदेशों में इसका महत्त्व बढ़ रहा है। क्योंकि घर ही छोटे बालक का सच्चा और स्वाभाविक विकास-स्थान है। वही सच्चा संस्कार-स्थान है। यदि बालक के माता-पिता सहयोगी, जानकार और ज्ञानवान् हों, तो उनका जीवन सुखमय होगा। बालकों का तंदुरुस्त, खुशमिजाज और मिलनसार होना उनके सफल जीवन का आधार है। इसलिए अब यही सोचना है कि वर्तमान परिस्थिति को न भूलते हुए बिना अधिक खर्च किये, स्वाभाविक, उत्तम और संपूर्ण शिक्षा किस प्रकार दी जाय ?

खर्च का प्रश्न तो अलग है। परंतु परिश्रम जीवन का आधार है। यदि उसकी आदत बालक में आ जाय, तो उससे उसका जीवन सफल बनेगा। ...

पूर्व-बुनियादी शिक्षा की तजवीज : २ :

सन् १९४५ के आरम्भ में एक दिन सुबह मैंने बापू से पूछा कि सेवाग्राम के ढाई साल के छोटे बच्चों की शिक्षा कैसी होनी चाहिए ? तो बापू ने कहा :

"हमारा प्रयत्न तो यह होना चाहिए कि जितने बच्चे हैं, उन सबको हम खींच लें। जो नहीं आते, उनके लिए हम स्वयं दोषी हैं। इन बच्चों को खींचने के लिए हमें काफी आकर्षण पैदा करना होगा। जितने बच्चे हमारे पास हैं, वे सब हमारी ही सन्तान हैं, यह समझकर चलना है। उनका शरीर तगड़ा हो जाय, उनका मन तगड़ा हो जाय, उनमें सामान्य सभ्यता आ जाय, तो हमारा काम हो गया, ऐसा मानना चाहिए। मैं नहीं मानता कि बच्चे तोड़ना-फोड़ना सीखते हैं। मैंने बहुत लड़कों को सिखाया है, किसीको ऊधम नहीं करने दिया। अगर वे मेरे हाथ में रहें, तो मैं ऐसी तालीम दूँ कि वे बचपन से ही ऊधम न करना, विध्वंस न करना सीखें। बल्कि जो कुछ करेंगे, वह सृजनात्मक होगा। इसीमें कला है।

"मैं यह नहीं मानता कि बच्चे जन्म से अच्छे या बुरे होते हैं। हाँ, स्वभाव से कुछ भिन्न तो जरूर होते हैं। लेकिन उसे तो हम ठीक करेंगे। इससे ज्ञात होता है कि जब बच्चा माँ के पेट में आता है, तभी से उसकी तालीम शुरू होती है। इसी पर प्रौढ़-शिक्षा खड़ी है। प्रौढ़ों के संस्कार बच्चों पर पड़ते हैं। बच्चे का संस्कार भी वहीं से शुरू होता है। बच्चे के हाथ-पैर हमेशा हिलते-डुलते रहते हैं और समय पर वह अपने-आप कुछ-न-कुछ करता रहता है। उसे यह पता नहीं होता कि वह क्या कर रहा है। लेकिन उसकी हरएक क्रिया रचनात्मक होती है, विध्वंसक नहीं।

"दो-ढाई साल के बच्चे हमारे हाथ में आयें और अपने हाथ-

पैरों का इस्तेमाल हमारे बताये रास्ते से करें, तो ये कहाँ तक जायँगे, मैं उसकी हद नहीं बाँध सकता। उन्हें मारकर नहीं, बल्कि प्रेम से ही सिखाना है।

"सिखाने की मेरी पद्धति तो यह होगी कि पहले रंगों की पहचान कराकर चित्र से शुरू करूँगा। अक्षर भी तो चित्र ही हैं। कोई तोते का चित्र बनायेगा, कोई सूत का और कोई अक्षर का। इस प्रकार सबके अलग-अलग चित्र होंगे। लिखना चित्र द्वारा शुरू किया जायगा। १, २, अलिफ्, बे, अ, आ आदि चित्र-रूप से सिखाये जायँ। जब वे अक्षर चित्ररूप में सीखेंगे, तो अलग से उन्हें अक्षर सिखाने की आवश्यकता नहीं होगी। पहले 'अ' या '१' का चित्र सीखें। सब अक्षर जब चित्रमय हो जायँ, तब उनका ज्ञान दिया जाय। 'थ्री आर्स' बाद में आयेंगे। आज की तरह 'थ्री आर्स' नहीं सिखाये जायँगे। पहले पढ़ना आ जायगा, तब चित्ररूप में लिखना शुरू किया जायगा। जेल में मैंने एक प्रायमरी रीडर लिखी थी। मालूम नहीं कहाँ खो गयी। इसी तरह बच्चे की बुद्धि बढ़ती जाती है, हाथ भी चलते हैं, पैर भी चलते हैं और वह सब खेलते-खेलते सीखता है।

"काम और खेल दो विभाग नहीं हैं। वह आगे बढ़ता है, तो इसी तरह उसकी जिन्दगी खेल या काम बन जाती है। मेरे पास चन्द घण्टे खेल और चन्द घण्टे काम, ऐसा कोई विभाजन नहीं है। मैं बचपन से ऐसे ही चला हूँ। मुझे कभी खयाल ही नहीं आता कि अब खेल का समय हो गया। मेरे लिए सीखना भी खेल था। बारह साल तक इसी प्रकार रहा। आज मैं कोशिश करता हूँ कि दोनों लिपियाँ साथ सीख लूँ। बच्चों को तो मैं दो साल पहले सिखा दूँगा। मेरे लिए यह काम आज कठिन मालूम होता है, किन्तु बच्चों के लिए तो यह बिल्कुल आसान है। बच्चे के लिए यह सब खेल होगा और जैसे-जैसे वह आगे बढ़ता

जायगा, यह सब खेल ही माना जायगा। मेरे लिए तो सच्ची नयी तालीम वही है, जहाँ बच्चे खेलते-खेलते सीखें। आज विदेशी भाषा सीखने में जितना समय दिया जाता है, उतने समय में बच्चे दूसरी दस लिपियाँ सीख सकते हैं।

"यहाँ यह याद रखना है कि सरकारी मदरसों के लिए वातावरण पैदा करना पड़ा था! सत्ता रहते हुए भी कठिनाइयों का सामना करना पड़ा था। हमें तो वातावरण पैदा करना है। यही पुनरुद्धार है। हमारी सब प्रकार की अच्छाइयाँ, जो मिट चुकी हैं, उन्हें नयी तालीम द्वारा फिर से फैलाना है। इस तरह से काम करना हमें आसान होना चाहिए। अभी तक हमने गाँवों में सही दृष्टि से सच्चा प्रवेश नहीं किया है। इसलिए हमें यह काम आसान नहीं लगता। नयी तालीम में वह शक्ति है, जो ग्रामोत्थान का काम बड़े चमत्कार के साथ पूरा करेगी।

"बचपन से ही यदि लड़के-लड़कियाँ हमारे हाथ में आयें और सात साल या उससे भी अधिक समय तक हम उन्हें शिक्षित करें और फिर भी यदि उनमें स्वावलंबन-शक्ति न आये, तो हमें यह मानना पड़ेगा कि नयी तालीम का पूरा-पूरा अर्थ हमने ग्रहण नहीं किया है। जो आधुनिक शिक्षा हमें दी जाती है, उसीके कारण हमारे मन में दुविधा होती है कि शिक्षा स्वावलम्बी हो ही नहीं सकती। मेरा दृढ़ विश्वास है कि यदि नयी तालीम द्वारा हम बालक को पूर्ण स्वावलंबी नहीं बना सकते, तो ऐसा मानना होगा कि शिक्षक समुदाय उसे समझता ही नहीं है। मेरी राय में नयी तालीम के जितने लक्षण हैं, उनमें स्वावलम्बन एक मुख्य अंग या लक्षण है। अगर यह बात छोटे लड़के-लड़कियों के लिए सही है, तो फिर प्रौढ़-शिक्षा में तो स्वावलम्बन होना ही चाहिए। अगर ऐसा माना जाय कि प्रौढ़-शिक्षा मुश्किल काम है, तो मैं यह कहूँगा कि यह सिर्फ वहम है। बच्चों को जैसे 'थ्री आर्स'

सिखाने के पक्ष में हम नहीं हैं, वैसे ही यह नहीं भूलना चाहिए कि नयी तालीम में सम्पूर्ण सहयोग आरम्भ से ही अमल में लाना चाहिए। सहयोग का पूरा अर्थ जो जानता है, उसके मन में स्वावलम्बन का प्रश्न उठ ही नहीं सकता।"

बापू का यह वक्तव्य पूर्व-बुनियादी और सयानों की तालीम का सिद्धान्तरूप है। बालक की शिक्षा उसकी माँ की शिक्षा से सम्बन्धित है। यह भी सिद्धांत ही है। माँ-बाप के परम्परागत संस्कार बच्चे के स्वभाव और प्रवृत्ति में भी पाये जाते हैं। जिस घर में वह पैदा होता है, वहाँ का वातावरण ही उसके शिक्षण का साधन है। यह स्वाभाविक है कि बच्चे का शरीर, बुद्धि और मन उसी वातावरण में निर्मित होता है। नये-से-नये वैज्ञानिक और शिक्षा-विशारद भी यह बात मानते हैं कि बालक का विकास और शिक्षा उसके घरेलू वातावरण और उसकी वास्तविक सृष्टि पर निर्भर होते हैं। कृत्रिम वातावरण में उनका पूर्ण विकास नहीं हो सकता। शाला और घर के लालन-पालन में विरोधी भाव नहीं होना चाहिए। क्योंकि उसका उसके जीवन पर असर होता है। उसी उम्र में बच्चे का शारीरिक और ऐन्द्रिक विकास होता है। अनेक प्राकृतिक शक्तियों और भावों का उसमें प्रादुर्भाव होता रहता है, जिन्हें समझने की दृष्टि माँ-बाप में होनी चाहिए। बच्चे की परवरिश के वे जिम्मेदार हैं। उन्हें उनकी जिम्मेदारी का ज्ञान देना जरूरी है। इसीमें प्रौढ़-शिक्षा का एक हिस्सा है। हमने इसीलिए प्रौढ़-शिक्षा और पूर्व-बुनियादी का गहरा सम्बन्ध माना है। जब हम किसी बालक की शिक्षा का भार अपने हाथ में लेते हैं, तो उसके माँ-बाप को अपना सहयोगी बनाना बहुत जरूरी है। इसे समझते हुए उन्हें हमारे कार्य में मदद करना जरूरी है। शिक्षक और पालक का यह स्नेह-संबंध बालक के जीवन में आनन्द भर देता है।

...

बालक, पालक और समाज : ३ :

हम प्रौढ़ नागरिक और आज की सरकार, दोनों इस बात को मान्यता दे रहे हैं तथा आज जनता में भी यह भावना फैल रही है कि छोटे बालकों की जिम्मेवारी तथा शिक्षा पहले हाथ में ली जाय, जिनमें खासकर देहात के काश्तकार-मजदूर, शहर के मध्यम श्रेणी के तथा मिल-मजदूरों के बालक आदि सभी सम्मिलित हों। हमें उनके जीवन, उनकी अड़चनों, अपेक्षित साधनों और विकास, सभी पर विचार करना है। यह भी सोचना है कि शिक्षा का तरीका क्या हो और कार्यकर्ता किस तरह तैयार किये जायँ। कुटुंब-संस्था कुछ दूसरा रूप ले रही है और सामाजिक वातावरण में भी बहुत-कुछ हेरफेर हो रहे हैं। कुटुंब का और सामाजिक वातावरण का एक-दूसरे से अत्यंत घनिष्ठ संबंध है। समाज कुटुंबों का प्रतिबिंब है। बालक कुटुंब में जन्म लेता है। सबसे पहले उसका संबंध माता से आता है। इसलिए माता-पिता को समझे बिना या कुटुंब की कठिनाइयों को समझे बिना हम बालक की शिक्षा का दावा नहीं कर सकते। हमें यह बात माननी ही होगी। विनोबाजी ने एक नया विचार रखा है कि जिस तरह माता-पिता के गुणावगुणों के संस्कार बालक पर पड़ते हैं, उसी तरह बालक भी पूर्वजन्म के संस्कार लेकर आता है और जन्म से पहले ही अपने माता-पिता चुन लेता है। इस तरह वह भी अपने गुणों का पोषक वातावरण ढूँढ़ता है। उसके शरीर, मन आदि का विकास शुरू में माता से संबंध रखता है।

जब से बालक माता की गोद में पलता है, तभी से वह उसका आश्रय-स्थान बनती है। समझदार माता अगर बालक

की परवरिश करे, तो वह तंदुरुस्त और खुश-मिजाज होगा। यदि वह उसकी ठीक देखभाल करती है, उसे साफ रखती है, समय पर उसे खाना देती है, उसके स्वतंत्र खेल-कूद में बाधा नहीं डालती और बीमारी में बालक की तीमारदारी करना जानती है, तो इतने में ही वह अपनी जिम्मेवारी को पूरे तौर से निबाह लेती है।

धीरे-धीरे वह उसके शारीरिक और मानसिक विकास की जरूरत को समझने लगती है। यह माता की प्रगति है। माता नासमझ हो, बालक की जिम्मेवारी लेने लायक न हो, वह उसे लाड़ से बिगाड़े या क्रोध से दबाये, तो वह बालक की प्रगति में बाधा उत्पन्न करती है तथा अपनी भी प्रगति रोकती है।

बालक भी माता की गोद को अपना आश्रय-स्थान मानता है। वहाँ उसकी भूख मिटती है। उसे आनंद आता है। यहाँ वह निर्भयता पाता है। इसलिए इस आश्रय-स्थान की ओर वह बार-बार खिंचता है। धीरे-धीरे उसके जीवन का व्यवहार बढ़ता है। चारों ओर उसे और-और लोग दिखाई देते हैं। उनमें से पिता के ऊपर उसकी दृष्टि स्थिर होती है। वह अनुभव करता है कि यह शक्तिमान् स्थान है। इस तरह उसका परिचय बढ़ता है और कुटुंब के सभी व्यक्तियों के साथ वह परिचित हो जाता है। यह घर है। अब उसकी दुनिया विशाल हो जाती है। अपना यह आश्रय-स्थान वह बिगाड़ना नहीं चाहता। इस आश्रय-स्थान में शिक्षाप्रद और सुखमय वातावरण न होगा, तो बालक के स्वभाव पर उसका असर अवश्य पड़ेगा। वातावरण के मुताबिक बालक विकसित होता है। अगर हम किसी जगह जायँ और वहाँ का वातावरण दिल को लुभानेवाला या हमें पसन्द हो, तो हम कहते हैं, वह स्थान बिलकुल घर जैसा लगता है। हम उसमें स्नेह पाते हैं, अपनापन पाते हैं। घर का स्नेह और अपनापन ही

बालक के सुखी-समृद्ध जीवन की नींव है। वही उसे आगे बढ़ने की शक्ति प्रदान करता है। विकास की सुविधा देना माता-पिता का काम है। वस्तुतः बालक के प्रति माता-पिता की जिम्मेवारी महान् है।

प्रौढ़-शिक्षण में माता-पिता या पालक को यह विषय पूरी जिम्मेदारी के साथ समझना चाहिए। गरीब माता-पिता छोटे बालक के विकास के प्रति उदास रहते हैं। उनका खुद का जीवन इतना सीमित रहता है कि जीवित रहना भी उनके लिए समस्या है। इसी कारण उन्होंने जिंदगी में यह चीज नहीं पायी है। वे इसे अमीरी का खिलौना मानते हैं। आज भारत में विकास-योजना, समाज-कल्याण आदि अनेक बालवाड़ियाँ खुल रही हैं। देहात और शहर की गरीब बस्ती में कोई कार्यकर्ता काम करने जाता है। परन्तु उसे निराश होना पड़ता है। ये माता-पिता यह मुफ्त का लाभ भी नहीं उठाते। अमीर माता-पिता का बालक उनका खुद का खिलौना बनता है। इसी कारण दोनों की अपेक्षा में विरोध होता है। जब कि बालक चाहे वह गरीब घर का हो, चाहे अमीर घर का, स्वभाव आदि में एक-सा ही रहता है। वह खुद माता-पिता का शिक्षक बनता है। क्योंकि उसकी सच्ची जरूरतें अपने-आप उमड़ पड़ती हैं।

मामूली घरों में गरीब बालकों से कच्ची उम्र में काम लिया जाता है। इसे काम सिखाना नहीं कहा जा सकता। यह तो एक प्रकार से बिना पैसे की गुलामी ही है। ऐसा बालक बचपन भूलकर बड़ा-बूढ़ा बन जाता है। खासकर गरीब घर की लड़कियाँ तो घर के काम का भार तथा छोटे बालक का भार भी उठाती हैं। अतः माता-पिता को यह समझाना आवश्यक है कि इस उम्र के बालक आगे आनेवाले समाज के निर्माता हैं। यदि आगे आनेवाले समाज को शक्तिशाली बनाना है, तो आज

के माता-पिता बालक से ऐसा काम करायें और उसे ऐसा काम सिखायें, जिससे कि उसके शरीर, बुद्धि और मन का विकास हो। उसे स्वतन्त्र मानव की तरह आगे बढ़ना है। उसे गुलामी की जिन्दगी का बोझ ढोना नहीं है। दूसरे कुछ माता-पिता ऐसे होते हैं कि वे बालक को अपना खिलौना मानते हैं और अधिक लाड़-प्यार से उसे बिगाड़ देते हैं। हमारी प्रौढ़-शिक्षा का उद्देश्य यह है कि माता-पिता को ये चीजें समझायी जायँ और उनकी अड़चनों को दूर किया जाय, जो बालक के आत्म-प्रकाशन में बाधक होती हैं।

माता-पिता के बाद बालक के जीवन में शाला का स्थान है। शिक्षक या बालवाड़ी के कार्यकर्ता उसी आत्मीयता को अपनायें, जैसी आत्मीयता बालक अपने घर में पाता है। यहाँ भी हमें सतर्कता चाहिए। छोटे बालक को शाला और घर के वातावरण में एक-सा आभास मिलना चाहिए। जब घर और शाला में स्नेह-भाव रहेगा, आपस में समानता और बंधु-भाव रहेगा, तो बालक शाला की अच्छाइयाँ घर भी ले जायगा। वह घर में शाला का वातावरण भरने की कोशिश करेगा। परन्तु घर और शाला के वातावरण में यदि परस्पर-विरोध रहेगा, तो वह विरोध बालक के विकास में बाधक होगा, क्योंकि उस पर दो भिन्न-भिन्न वातावरणों का प्रभाव समान नहीं हो सकता। फिर दोनों में से जिसकी अच्छाई या बुराई ज्यादा प्रभावशाली होगी, वही अपना असर उसके जीवन पर डालती रहेगी। इसलिए पालक और शिक्षक, दोनों को ही पारस्परिक स्नेह से बालक के जीवन पर संस्कार डालने चाहिए, ताकि उसके जीवन में विरोधात्मक विचार ही न पैदा हों। इसकी जिम्मेवारी पालक और शिक्षक, दोनों पर समान रूप से है।

जैसे शाला और घर की एकता तथा शिक्षित वातावरण

बालक के समृद्ध जीवन के पोषक बनते हैं, वैसे ही समाज का भी वातावरण बालक के जीवन को आगे बढ़ानेवाला हो। कई शिक्षण-संस्थाएँ तथा विचारवान् लोग ऐसा सोचते हैं कि आजकल का सामाजिक वातावरण बालक के विकास में बाधक हो रहा है। जो कुछ ज्ञान वह घर में या शाला में पाता है, उससे कहीं ज्यादा वह बाहरी वातावरण से लेता है, जो उसके लिए घातक है। पुराने देहाती-समाज शिक्षा के केन्द्र माने जाते थे। अभी भी वहाँ इस सामाजिक शासन के दायरे में लोग रहते हैं।

हरएक व्यक्ति के निजी और सामाजिक जीवन में मधुर संयोग रहना जरूरी है। आज के बालक कल के नागरिक हैं। यदि कोई समाज अपने शासन से व्यक्ति के जीवन को दबाने की कोशिश करेगा, तो वह समाज जिन्दा नहीं रहेगा। ठीक उसी तरह अगर कोई व्यक्ति सामाजिक जीवन के विपरीत चलेगा, तो वह अपने पैरों में आप कुल्हाड़ी मार लेगा। कहने का मतलब यह है कि समाज से व्यक्ति है और व्यक्ति से समाज है। दोनों एक-दूसरे पर निर्भर रहते हैं, एक-दूसरे के पोषक हैं और एक-दूसरे की शक्ति बढ़ाते हैं। अच्छे, समझदार और शिक्षित नागरिकों का समाज प्रभावशाली होता है। यदि माँ-बाप और शिक्षक, दोनों समझ लें कि हमारे पारस्परिक सहयोग से प्रभावशाली समाज बननेवाला है, हम समाज के अवयव हैं और यदि इस दिशा में उनका सच्चा प्रयत्न रहे, तो बालकों की शिक्षा पूर्ण होगी और उनका भविष्य उज्ज्वल होगा। यही वजह है कि पूर्व-बुनियादी के पाठ्यक्रम में प्रौढ़-शिक्षा का स्थान बड़े महत्त्व का है। अगर बच्चे के लिए हमें वातावरण तैयार करना है, तो समाज और कुटुम्बियों में मेल बढ़ाना होगा, क्योंकि हमारे पास आनेवाला बच्चा कुटुम्ब और समाज का उत्तरदायित्व उठानेवाला है।

अब आगे स्वावलंबन की बात आती है। कोई पूछ सकता

है कि स्वाश्रय या स्वावलंबन का क्या अर्थ है? इसका अर्थ यदि कमाई है, तो दो-तीन साल का बच्चा क्या कमा सकेगा? बात बिलकुल ठीक है। इतने छोटे बच्चे से कमाई की अपेक्षा नहीं की जा सकती। परंतु इतना सत्य है कि उसका हिलना-डुलना, खेल-कूद, सभी सृजनात्मक होते हैं। इसमें अगर प्रगति हो, तो उसकी क्रिया-शक्ति उत्तरोत्तर बढ़ती जायगी। खेल-खेल में वह हरएक काम करने का अभ्यस्त हो जाय, तो उसे आगे चलकर कोई काम बोझ नहीं मालूम होगा। काम करते-करते वह उस काम में दिमाग भी लगायेगा, जिससे उसकी क्रियात्मक प्रवृत्ति अधिक बढ़ती जायगी। जिस परिवार में माँ-बाप काम करनेवाले होते हैं, वहाँ बच्चा भी कुछ-न-कुछ करता ही रहता है। काम के साथ-साथ बुद्धि भी तैयार होती है। इसलिए आगे की शिक्षा-संस्थाओं की नींव ही स्वावलंबन की बुनियाद पर डालनी है। बापू हमेशा देहात की दृष्टि से सोचते थे। यानी पूरी दुनिया के समाज को देखते थे। आज की हमारी सामाजिक हालत देखकर ही उन्होंने कहा था, प्रौढ़-शिक्षा के मानी हैं प्रौढ़ों को उनकी जिम्मेदारी समझाना और उनकी कमाने की शक्ति बढ़ाना। एक कमाये और सौ खायें, ऐसा नहीं हो सकता। हरएक कमाये और सब मिलकर खायें, यही समग्र जीवन का मूलमंत्र है। मुझे मरीज के मरने का डर नहीं है। मैं उसे मरीज बनने से रोकूँ, इतना ही बस है। अच्छे समाज में पंगु बहुत कम रहते हैं। बच्चों को तो माँ-बाप खिलाते ही हैं। अच्छे कुटुंब में बच्चे लम्बे अरसे तक भी भार नहीं होते। बच्चा जहाँ ४-५ साल का हुआ कि कुटुंब की मदद करना प्रारम्भ कर देता है। यही हमारी नयी तालीम है और यही हमारी नयी तालीम के स्वावलम्बन का अर्थ है। ...

माता के प्रश्न और बालक की प्रगति : ४ :

मेरी 'पूर्व-बुनियादी तालीम' पुस्तक में इसका विचार भिन्न दृष्टि से किया गया था। वहाँ बालक को केन्द्र में रखकर ही आगे बढ़े थे, परन्तु बालक जन्म से लेकर सात साल तक जिस दुनिया में पलता है, उसकी तरफ सरसरी नजर रखना जरूरी है। हमारे पुराने आदर्शों में 'चार' का अंक बड़ा महत्त्व रखता है। चार वेद, चार वर्ण, चार आश्रम, चार पुरुषार्थ इत्यादि माने गये। आयु के चार हिस्सों में से ब्रह्मचर्याश्रम ने नवयुवकों के सामने जीवन के आदर्श रखे। उन्हें बताया गया कि बचपन से युवावस्था तक अपने शरीर, मन, बुद्धि को किस तरह विकसित किया जाय; ताकि वे गृहस्थाश्रम की जिम्मेवारी उठा सकें। परन्तु स्त्रियों को ऐसा कोई विकासमय आदर्श नहीं बताया गया, जिससे आनेवाली जिम्मेवारी के लिए वे तैयार रहें। माता का स्थान ऊँचा है, यह अनेक प्रसिद्ध व्यक्तियों ने बताया है। माता के त्याग का वर्णन किया गया है। परन्तु उसको इसके लिए कुछ तैयारियाँ करनी जरूरी हैं, यह किसीने महसूस नहीं किया।

माता के हमारे ऊँचे आदर्श कुछ स्त्रियों ने निबाहे हैं। विषम परिस्थिति में भी उन्होंने अपनी संतान को आदर्श बनाया। यदि शकुंतला भरत को तेजवान् न बनाती, तो भारत देश का भविष्य उज्ज्वल कहाँ था ? राम को भी झुकानेवाले लव-कुश प्रसंग में सीता की विजय थी। अभिमन्यु के निर्माण में सुभद्रा का बहुत हाथ था। ऐसे उदाहरण हम पाते हैं। 'न मातुः परदैवतम्' यह वाक्य बार-बार हम दुहराते हैं।

इतना होते हुए भी हम इस प्रश्न को कितनी ऊँचाई से देखते हैं ? गर्भावस्था से लेकर सात साल तक बालक का जीवन माता के जीवन से संबंधित है। इसी कारण यह महत्त्वपूर्ण है।

इसके चार हिस्से हैं—गर्भावस्था से जन्म तक, जन्म से लेकर ढाई साल तक, ढाई से लेकर चार साल तक और चार से लेकर सात साल तक।

पूर्वावस्था में माता के आरोग्य और हिफाजत पर बालक का स्वास्थ्य निर्भर है। माता की जिम्मेवारी ज्यादा होते हुए भी उसके स्वास्थ्य, संस्कार, विकास पर हमने कभी विचार नहीं किया। आज भी हमारे यहाँ कई घरों में ऐसे विभाग हैं, जहाँ सूर्य-प्रकाश छूता तक नहीं है। माता-पिता के घर में स्वतंत्र ढंग से चलनेवाली बालिका एकदम ऐसे पिंजड़े में बंद कर दी जाती है और शरीर-स्वास्थ्य के लिए घरों में अभी भी वही उदासीनता दिखाई देती है। फिर भी इन दस वर्षों में कुछ प्रगति जरूर हुई है, यह आनंद की बात है। अच्छी संतान, संस्कारमय जीवनवाली संतान चाहिए, तो हमें माता का विचार करना आवश्यक है।

हम यदि प्रभावशाली माता चाहते हैं, तो जिस तरह ब्रह्मचर्याश्रम में नवयुवकों के लिए निश्चित कार्यक्रम और आदर्श रखे गये हैं, वैसे ही लड़कियों के लिए भी रखें। हमें यह समझना चाहिए कि यदि यह कार्यक्रम न रखा गया, तो इसका कुपरिणाम समाज को आगे चलकर भुगतना ही पड़ेगा।

स्त्री का गर्भवती होना स्त्री के जीवन का आनन्द है। इसकी तैयारी बचपन से करनी है। हड्डियाँ बहुत छोटी उम्र में बनती हैं। यदि उन दिनों लड़की की उम्र के मुताबिक खुराक उसे न मिली या संतुलित खुराक न मिली, तो चूने की कमी के कारण हड्डी भी सिकुड़ जायगी। इसका पता किसीको रहता नहीं और लोग मान बैठते हैं कि लड़की नाजुक है। जब माता होने का अवसर आता है, तो उसे अपनी जान की बाजी लगानी पड़ती है। दूसरी कमजोरी है खून की। पाँच-छह साल तक वह नाजुक है, ऐसा कहकर हम भले ही टाल दें। परंतु इसका परिणाम उसे

जीवनभर भुगतना पड़ता है। देहात और शहर की स्त्रियों में आरोग्य की दृष्टि से फिर भी कुछ फर्क रहता है। इसका कारण है देहात का परिश्रमी जीवन, खुली हवा और प्रकाश, जो कि भगवान् की देन है।

इसलिए लड़की की हिफाजत, उसके आरोग्य की रक्षा और उसके संस्कारमय जीवन पर हमें गम्भीरता से सोचना चाहिए। यह मानकर हमें सोचना है कि लड़की योग्य माता कैसे बने।

लड़की का आरोग्य और उसका संस्कारमय जीवन बनने की अवस्थाएँ स्पष्ट होनी चाहिए। दस साल तक आरोग्य और बुद्धि-विकास में लड़के-लड़कियों में भेद नहीं है, फिर भी लड़कियाँ ज्यादातर घर के अंदर पलती हैं। इसलिए उनका मनोगठन अलग होता जाता है। शाला हो या घर, हम यह भेद धीरे-धीरे उस पर स्पष्ट कर देते हैं।

शारीरिक परिवर्तन लड़की में ग्यारह-बारह साल की उम्र से दिखाई देने लगता है। शरीर में परिवर्तन के साथ-साथ भावनाओं में परिवर्तन आता है। यदि इन सबका विकास ठीक-ठीक होता रहे, तब तो वह सच्चे रूप में माता का स्थान लेती है, वरना वह निरी यन्त्र का काम करनेवाली ही तैयार होती है। हमें विचार करना चाहिए कि शरीर-स्वास्थ्य, पोशाक, काम, बुद्धि-विकास, भावना, संस्कार आदि से एक स्वतंत्र व्यक्तित्व का निर्माण हो, तो उसमें से नवशिशु का जीवन अपने-आप आगे बढ़ेगा और हमारा पूर्व-बुनियादी का आधा उद्देश्य पूरा होगा।

जब ऐसी लड़की माता की जिम्मेवारी उठाने को तैयार होती है, तो उसे अपनी हिफाजत और बालक का स्वास्थ्य दृष्टि में रखना चाहिए। उसे नियमित आहार, नियमित विश्राम, परिश्रम की जाँच, सफाई आदि की आदतें होनी चाहिए। माता के स्वास्थ्य से बालक का पोषण पूरा-पूरा होता रहे, यह ध्यान में रखना चाहिए।

डॉक्टरों का कहना है कि इस अवस्था में माता को धीरे-धीरे ३००० कॅलरी उष्णता-उत्पादक परिमाण में आहार लेना चाहिए। भोजन में फल-दूध, साग-सब्जी और थोड़ी मात्रा में घी या मक्खन लेना चाहिए। दाल-भात, रोटी, रोज का आहार भी नियमित और हिसाब से लेना चाहिए। दूध, साग-सब्जी—जैसे गाजर, टमाटर, मूली, मेथी, पालक, गन्ने का रस या जहाँ मिलती हो वहाँ नीरा या नारियल का पानी लेना चाहिए। संतुलित आहार तथा नियमित परिश्रम करना चाहिए। विश्राम के समय विश्राम करना चाहिए। इसका आनंद माता को बालक के जन्म के साथ मिलेगा।

परदे में रहनेवाली तथा बीमार गरीब स्त्रियाँ इस आनंद से वंचित रहती हैं। इसका कारण है उनका स्वास्थ्य। यदि माता और परिवार के लोग इस बात को समझ लें, उन्हें इस खतरे का ज्ञान हो, तो हर साल अगणित माताएँ और बालक मृत्यु से बच जायँ। बीमार माता का बालक भी कमजोर होता है। हिंदुस्तान में बालकों की मृत्यु-संख्या हमारे लिए शर्म की बात है। त्याग, परिश्रम और कुरबानी के साथ माता को अपने खून और हड्डियों से निर्माण किये हुए बालक से हाथ धोना पड़ता है और दुःख है कि यह सब अज्ञान के कारण हो रहा है।

इसलिए पूर्व-बुनियादी-बालवाड़ी के साथ एक आरोग्य-केन्द्र का होना आवश्यक है। एक ग्राम-सेविका की हैसियत से माताओं को इन बातों का ज्ञान देना आवश्यक है। वैसे ही हर प्रौढ़ को सब बातों की जानकारी होना आवश्यक है।

पहले दो साल बालक के लिए कठिन हैं। शुरू में यदि माता स्वस्थ रहती है, तो समझना चाहिए कि बालक भी उसके पेट में स्वस्थ अवस्था में था। गर्भावस्था में शिशु का जीवन माता के जीवन से बँधा था। माता से वह परवरिश पाता था। कोई

चिन्ता न थी। परन्तु जन्म पाकर उसे स्वतन्त्र अस्तित्व मिला और यह स्वतन्त्रता भी अचानक मिली। अब हर चीज के लिए उसे परिश्रम करना जरूरी हो गया। अब उसमें हर बात की आदत डालनी है, सर्दी-गर्मी बरदाश्त करनी है, खाने के लिए परिश्रम करना है, अपरिचित दुनिया से परिचय प्राप्त करना है। उसके लिए यह बाहरी दुनिया एकदम नयी होती है। वह कितना बरदाश्त करके इस दुनिया में पैर रखता है! वह आते-आते थक-सा जाता है, आराम चाहता है। लेकिन यह परिवर्तन हम अज्ञान माता-पिता कहाँ समझते हैं?

अब तक बालक के लिए कुदरती तौर से मुलायम स्थल और गरम वातावरण तैयार था। पर बाहर आते ही बेचारे को जमीन या चटाई पर सुला दिया जाता है। एक फटा-पुराना चीथड़ा लपेट दिया जाता है। पहले माँ घूमती-फिरती थी, तो उसे स्वच्छ हवा भी मिलती थी। अब तो वह धुआँ-भरी अँधेरी कोठरी में पड़ा रहता है। यदि माँ को भगवान् ने दूध दिया तो अच्छा ही है, नहीं तो माँ की कमजोरी के कारण दूध के अभाव से उसे भूख के मारे ही चिल्लाना पड़ता है। जहाँ-तहाँ से दूध लाया जाता है, गंदे ढंग से उबाला जाता है और किसी भी चीथड़े को भिगो-कर बच्चे के मुँह में लगा दिया जाता है। पिया तो पिया, नहीं तो कोई क्या करे? कोई पानी पिलाने को कहता है, तो दूसरा बच्चे को सर्दी लग जाने का डर बताता है। इस तरह बेचैनी की जिन्दगी बिताते हुए छह माह गुजर जाते हैं। लेकिन इन दिनों भी माँ यदि समझ ले कि अब तक मैं गलत तरीके से इसकी हिफाजत करती थी, अब इसे जानकारी से सँभालूँगी, तो बच्चे का जीवन आनन्द-मय बन सकता है। आज माँ को यह सब समझना है कि बच्चे को स्वच्छ हवा चाहिए, साफ कपड़े चाहिए; ताकि वह नन्हा-सा शिशु बीमारियों से बचा रहे। उसके लिए दूध का किस प्रकार इन्तजाम

होना चाहिए, कितनी बार पिलाना चाहिए; ताकि न उसकी भूख मारी जाय, न उसे बदहजमी ही हो। उसको कैसे कपड़ों में रखें, जिससे उसका कोमल शरीर ठंड और गरमी से बचा रहे। कब नहलाना चाहिए और कब सुलाना चाहिए, इन सब बातों की जानकारी माँ को होना जरूरी है। जब वह इन सब बातों पर भलीभाँति ध्यान देगी, तभी वह धीरे-धीरे बच्चे में अच्छी आदतें डालने में सफल होगी और उसके शरीर के पूर्ण विकास में भी सहायक होगी। आठ-नौ मास बाद बच्चा बाहरी जीवन में प्रवेश करने लगता है और तभी दाँतों की शिकायत शुरू होती है। धीरे-धीरे बच्चे के सभी दाँत निकल आते हैं, मगर सभी दाँत निकलने तक बच्चे को बहुत परेशानी उठानी पड़ती है। यदि शरीर में चूना (कैलशियम) या खून की कमी रहती है या पहले से पूरा खाना नहीं मिलता है, तो उसका जीवन ही खतरे में रहता है। उसे छूत की बीमारियों से बचाना चाहिए। पहले दो साल बालक यदि पनप गया, तो उसका आगे का पालन-पोषण आसान होता है। धीरे-धीरे वह स्वतन्त्र होने लगता है, स्वयं चल सकता है, थोड़ा-बहुत बोल सकता है, अपने चारों ओर की चीजों और परिवार के लोगों को समझने लगता है। इस समय बाहरी वातावरण का अच्छा असर डालना हमारा काम हो जाता है और यहीं से हमारा पूर्व-बुनियादी-वर्ग शुरू होता है।

माता की तरह पिता की जिम्मेवारी भी कम नहीं होती। माता-पिता, दोनों के जीवन एक साथ बँधे हैं। दोनों के संस्कार, आरोग्य, स्वभाव बालक के जीवन पर असर डालते हैं। इसलिए माता का जीवन सफल होना है, तो पिता को उतना ही हिस्सा लेना आवश्यक है, जितना कि माता को।

अब शाला का काम शुरू हो जाता है। दो साल का बच्चा अभी घर से ज्यादा घुला-मिला रहता है। शाला में आता है,

परन्तु अधिक समय माँ से दूर रहना पसन्द नहीं करता। उसका खिंचाव घर की ओर रहता है, जो स्वाभाविक है। लेकिन अगर घर और शाला का वातावरण एक-सा रहेगा, माँ-बाप और शिक्षक में कोई भेद नहीं रहेगा, तो बालक शाला के अनोखे वातावरण में हिल-मिल जायगा। इसलिए शुरू से ही बच्चों को तालीम देनेवाले शिक्षक को अपने काम के समय में से निश्चित समय बच्चों के घर जाने और उनके माँ-बाप से बातचीत करने के लिए देना चाहिए। इससे बच्चों में शिक्षक के प्रति आत्मीयता बढ़ती है और उसे शाला में आने में झिझक नहीं होती।

अब शरीर-विकास के साथ बच्चे का सम्पूर्ण विकास किस तरह होगा, इस पर सोचें। इन्द्रिय-विकास तथा आत्मप्रकाशन द्वारा बच्चा सम्पूर्ण विकास की ओर आता है। बच्चे का सक्रिय जीवन यहीं से शुरू होता है। उसमें हाथ-पैर चलाने की इच्छा शुरू से रहती है। अब वह हाथ-पैर का उपयोग बुद्धि के साथ करने को अधीर हो उठता है। उसके लिए हर क्षण काम है। उसका खेल ही काम है। अब शिक्षक को यह जानना चाहिए कि सक्रिय जीवन क्या है। एक, दो या ढाई साल के बच्चे से हम क्या काम करवा सकते हैं ? बुद्धिमान् शिक्षक जानता है कि बच्चा जब बहुत तंग करता है, तो माँ उसे बहलाने के लिए कितने काम बताती है। जैसे कटोरी रख आ, थोड़ा पानी दे, छोटे भाई या बहन का कपड़ा ला दे इत्यादि। बच्चा खुशी-खुशी सारा काम दौड़-दौड़-कर करता है। माँ के साथ कभी रोटी बेलता है, तो कभी बर्तन माँजता है; कभी बाप के काम में हाथ लगाता है। काम की दृष्टि से तो काम कुछ नहीं होता; लेकिन बच्चे के लिए यह शिक्षा है। हमें उसकी क्रियात्मक प्रवृत्ति को बढ़ावा देना है।

हमारे देहात का वातावरण इस क्रियात्मक प्रवृत्ति का पोषक है। बच्चा सीधा प्रकृति के सम्पर्क में रहता है। वह अपने माँ-बाप

का काम में लगा रहना बड़े गौर से देखता है। आज का देहाती जीवन, जो ठीक नहीं है, उसे हमें बनाना है। बच्चे की इस क्रियात्मक प्रवृत्ति को शास्त्रीय ढंग से आगे बढ़ाने के लिए वातावरण घर में ही पैदा करना होगा। शहर की बनिस्बत गाँव में बच्चे छोटी उम्र में ज्यादा फुर्तीले, तेज और खुशमिजाज होते हैं। यदि कोई बीमारी भी है, तो उसे साफ रहना सिखाया जाय। काम के साथ-साथ ज्ञान भी बढ़ेगा। खाने-पीने में हिफाजत की जानकारी और बीमारी में देखभाल करने का तरीका यदि ठीक ढंग से रहे, तो बच्चे कहाँ तक बढ़ेंगे, कहा नहीं जा सकता। उनके हाथ तैयार हैं। उनमें दिमाग डालना हमारा काम है।

सक्रिय जीवन की तरह गुण-विकास की भी जरूरत है। आज देहात जिस तरह कूड़ों से भरा रहता है, उसी तरह देहाती जीवन भी रूढ़ियों, बुरी आदतों, आलस आदि कूड़ों से भरा रहता है। इसका खराब असर बच्चों पर पड़ता ही है। हमें छुटपन से ही उनमें गंदी आदत से नफरत पैदा करनी है। उन्हें बुरी बातों से बचाना है, आलस्य को दूर करना है। मतलब यह कि उनमें ऐसा स्वभाव पैदा करना है कि ये बातें स्वयं हट जायँ। ये ही बच्चे ८-१० साल में गाँव के काम की जिम्मेवारी उठाने लायक होंगे और अपने माँ-बाप को सिखायेंगे।

गुण-विकास के लिए मुख्य बात है : आदत। जब किसी चीज की आदत हो जाती है, तो वह स्वभाव में दाखिल हो जाती है। यानी स्वभाव आदत से ही बनता है। छुटपन से ही खाने-पीने या रहन-सहन की जैसी आदत डाली जाती है, उसे छोड़ने में बड़ी कठिनाई होती है। हम कहते हैं, यह हमारा स्वभाव बन गया है। इसलिए शिक्षा-शास्त्र में आदत और वातावरण को भी वंशपरम्परागत गुण के समान महत्त्व देना जरूरी है।

...

बालकों के गुण-विकास की कुछ बातें : ५ :

यह विषय गहन है। यह जीवन-विश्लेषण है। शैशवावस्था को जीवन की नींव कहा गया है। बचपन के संस्कार यदि जीवन-भर की पूँजी है, तो हमें आग्रह के साथ इस पूँजी की महत्ता खोजनी है।

आनुवंशिक गुण-धर्म चाहे वे शारीरिक हों, चाहे मानसिक या नैतिक, धीरे-धीरे विकसित होने लगते हैं। बालक जब बढ़ने लगता है, तब ये प्रवृत्तियाँ धीरे-धीरे अपना स्वरूप प्रकट करती हैं।

आनुवंशिकता जिस तरह कुटुम्ब की रहती है, उसी तरह समाज तथा मनुष्य-जाति की भी रहती है। इस विशेषता का बालक के जीवन में किस तरह उदय होता है, हमें यह देखना है। बालक के जन्म से एक साल तक उसके शरीर का गठन भी कुछ अलग रहता है। कुछ लम्बा रहता है, कुछ मोटा रहता है। शरीर काफी मुलायम, हड्डियाँ कमजोर रहती हैं; किन्तु शरीर की गठन धीरे-धीरे बदलने लगती है। वह सिर उठाता है, बैठने लगता है, घुटनों के बल सरकने लगता है, 'काका', 'बाबा' आदि शब्द बोलने लगता है। प्रौढ़ों की नकल करता है, जो कि हमें बड़ी सुहावनी लगती हैं। दो-ढाई साल का होने से पहले ही वह बोलने लगता है, दौड़ने लगता है, खिलौनों के साथ खेलने लगता है, दूसरे बच्चों के साथ खेलने भी जाता है। उसने अपने शरीर को पूरी तरह सँभाल लिया है, अपने को स्वतंत्र बना लिया है, उसका विकास होता जा रहा है। उसकी बुद्धि में भी इसी तरह वह परिवर्तन दिखाई देता है। दुनिया का धुँधला चित्र अब उसके सामने स्पष्ट होता जाता है, वह उसे पहचानने लगता है।

माता-पिता को यह समझना है कि बालक की इस विकास-योजना का वे अपनी इच्छा के अनुसार समय घटा-बढ़ा नहीं सकते, यह तो कुदरत का काम है; लेकिन उन्हें उसमें मददगार जरूर रहना है।

इन दिनों बालक की कई प्रवृत्तियाँ जाग्रत होती हैं, खिलने लगती हैं। दो-ढाई साल का बालक हरदम क्रियाशील रहना चाहता है। वह अपने प्रयोग के अनेक तरीके ढूँढ़ने लगता है। इस प्रवृत्ति में मदद देना माता-पिता का कर्तव्य है। प्रेमवश उसमें बाधक होना हानिकारक है, यह बात भी उन्हें समझनी है।

मैंने पहले ही कहा है कि बालक का विकास समय-समय पर दीखता रहता है। इसीसे संबंधित बातों के बारे में हमें सोचना है। गुण-विकास के लिए बालकों में अच्छी आदतों का डालना जरूरी है। इसीको दूसरे शब्दों में हम 'संस्कार' कहते हैं, जो कि सदियों की आदतों से बनते रहते हैं। शरीर की आदतें, मन की आदतें, बुद्धि की आदतें होती हैं—जिनके बारे में हम कहते हैं कि यह अब हमारा स्वभाव बन गया है। बालकों का स्वभाव चंचल है, नटखट है, असंयमी है, ऐसा हमें प्रतीत होता है। परंतु यह तो उनके जीवन के अनिवार्य अंग हैं। परन्तु वह धीरे-धीरे माता-पिता द्वारा या शिक्षक द्वारा मदद पाकर उस पर काबू पाता है। यह एक शिक्षा-विधि ही मानी जानी चाहिए।

सफाई की आदतें शरीर के आरोग्य के लिए हैं। दो महीने की उम्र से बालक को दूध पीना, पेशाब-पाखाना आदि क्रियाओं के समय की आदत पड़ गयी हो, तो उसकी संयम की आदत भी बढ़ने लगती है। इसका मतलब यह नहीं कि वह माता के सामने गलती न करेगा, परन्तु वह माता के सामने अपनी अच्छी आदतें संयम के साथ प्रकट करने का प्रयत्न जरूर करेगा।

गुण-विकास में आज्ञा-पालन की आदत का सवाल खड़ा

होता है। स्वतन्त्रता के इस युग में बिना दबाव डाले आज्ञा-पालन की आदत डालना कठिन है। जबरदस्ती का आज्ञा-पालन जीवन को नष्ट कर देता है, क्योंकि बड़ों को हुकूमत की आदत होती है। 'बड़ों का कहना मानो', यह वाक्य उसे सिखाया गया। यदि आज्ञा-पालन जबरदस्ती से बालक को करना पड़ा, तो वह जरूर उसके विरोध में उठ खड़ा होगा। परन्तु यदि प्रेम के द्वारा उसे आज्ञा-पालन करना पड़े, तो वही बालक संयम और नम्रतापूर्वक उसे मान लेगा।

जिस तरह अस्वाभाविक ढंग से आज्ञा-पालन कराया जाय, ठीक उसी तरह अस्वाभाविक स्वतन्त्रता से भी बालक का जीवन नष्ट होता है। बालक मनमाना बर्ताव करने लगता है और फिर बड़ेपन में कौटुम्बिक जीवन में हलचल मच जाती है। इसलिए कुछ मोटी-मोटी बातें ध्यान में रखकर नियम बना लेना आवश्यक है, फिर चाहे वह आदत हो या आज्ञा-पालन।

स्वाभाविक रूप से बालक में अच्छी आदतें आयें, इसके लिए बड़ों का जीवन भी संस्कारयुक्त होना जरूरी है। उनके चारों तरफ ऐसा वातावरण रहे कि बालक खुद उसमें ओतप्रोत हो जाय। हम खुद एक करें और बालक से दूसरा कुछ कहें, तो वह हम पर विश्वास नहीं करेगा। उसका हम पर से विश्वास उठ जाता है। आज्ञा-पालन, सफाई, सच्चाई आदि की आदत डालनी हो, तो बड़ों को, खासकर माता-पिता और शिक्षक को, अपना बर्ताव और जीवन आदर्श और संयमयुक्त बनाना चाहिए।

इंद्रिय-ज्ञान शरीर-ज्ञान से अलग क्यों माना जाय? शरीर, मन, बुद्धि इंद्रियों से संबद्ध हैं। बालक के विकास के समय यह भेद न माना जाय। चाहें तो यह जरूरी बात मानें कि समय के मुताबिक भी हरएक शारीरिक विभाग के विकास की तरफ कुछ ज्यादा ध्यान हो।

विनोबाजी ने इस चर्चा पर अपने विचार प्रकट करते हुए कहा है : "इंद्रिय-विकास की शक्ति कोई बड़ी बात नहीं है। नैसर्गिक जीवन से वह सहज सधती है। शिक्षण के लिहाज से आवश्यक बड़ी बात है, इन्द्रियों की अभिरुचि परिशुद्ध बनाने की। कृत्रिम जीवन से इन्द्रियाँ परिशुद्ध नहीं होतीं, वे बिगड़ती हैं।" हमें जरूरत है पूर्ण विकास की। फूल खिलने का अर्थ है, फूल की पँखुड़ियाँ खिलें, उसके अन्तरंग की आभा दीखे, उसकी गंध चारों ओर फैले, वह हवा में डोले, जिससे सबको उसका आकर्षण हो। इसीको उसका पूर्ण रूप से खिलना कहेंगे। यह गुण-विकास है।

बालक से हम हर वक्त आज्ञापालन की अपेक्षा नहीं रख सकते। कई बार बालक अनसुनी कर जाता है। उसका कोई न कोई कारण अवश्य होता है। थकान या उदास तबीयत का कारण भी हो सकता है। हठ के कारण भी वह कभी-कभी हमारी बात नहीं मानता। किसी लालच के कारण भी रूठ जाता है या हो सकता है, उसे डर लग रहा हो। इन सब स्थितियों की जाँच करने की हममें क्षमता होनी चाहिए। बालक के लिए आज्ञापालन तभी आसान होगा, जब शिक्षक ठीक ढंग से उसका मार्गदर्शन करेगा। स्वाभाविक शिक्षा और नियमित व्यवहार से चलने का वातावरण हो। हम कोई बात कहें, तो बालक उसे समझकर करे। हमारे कहने का ढंग शांति और दृढ़ता का हो, ताकि बालक काम करने में रुचि ले। आदत डालने से स्वाभाविक आज्ञापालन सहज साध्य हो जाता है।

जैसे अच्छी आदतें बालक के गुण-विकास का साधन हैं, उसी प्रकार खेल उसके व्यक्तित्व को प्रकट करता है। वह उसे आगे बढ़ाता है। खेल से पता चल जाता है कि बालक में क्या-क्या गुण भरे हैं। उनमें से कुछ गुण तो आनुवंशिक हो सकते हैं, परंतु अधिकतर गुण वातावरण और संयोग से विकसित होते

हैं। इसलिए घर हो या शाला, उसमें खेल के जो साधन हों, वे सभी बच्चों के गुण-विकास और सक्रिय जीवन को आगे बढ़ानेवाले हों। खेल में आत्म-प्रकाशन तथा सामाजिक जीवन के साथ चलने की भावना भरने में हमें वालक की मदद करनी चाहिए। परन्तु यह याद रखना होगा कि हम सिर्फ मददगार रहें। हम जैसा चाहें वैसा ही खेल वालक खेलें, ऐसा आग्रह नहीं होना चाहिए।

हमारे खेल के साधन वालक को सक्रिय बनानेवाले हों।

उसका व्यक्तित्व प्रदर्शित करनेवाले हों।

बुद्धि के विकास में मददगार हों।

जीवन से सम्बन्धित आसपास के वातावरण से मिलते हुए हों। उसकी सृजन-शक्ति वढ़ानेवाले हों।

वालक अनुकरण-प्रिय तो होता ही है, उसे साफ-सुथरे कपड़े पसंद होते हैं। उसे सजना अच्छा लगता है। रंग-विरंगी फूल-पत्तियों को देखकर वह आनन्दित होता है, नाचना और गाना उसके हर्ष का विषय है। यानी, वालक उत्सव-प्रिय या उत्सव-देवता है। इस प्रवृत्ति को वह खेल द्वारा प्रकट करता है। उपर्युक्त वातें बच्चों का आत्मप्रकाशन और अनेक कलापूर्ण गुणों का विकास करनेवाली हैं। ऐसे खेलों की योजना उनके सामुदायिक और सांस्कृतिक जीवन के विकास में सहायक होती है। उसे अच्छे मार्गदर्शन तथा योजना के अनुसार बढ़ाया जाय, तो बच्चे के जीवन में ललित कला भर जायगी और आनन्द का निर्माण होगा। ढोलक या घुँघरू की आवाज सुनकर बच्चा नाचने लगता है। गाना सुनना तो स्वयंस्फूर्ति से ही करता है। रंग भरना, माला वनाना आदि सभी कामों में वह हिस्सा लेना चाहता है। इन्हीं प्रवृत्तियों को सामने रखकर हमें पूर्व-बुनियादी शाला के साधन जुटाने हैं। वास्तविक जीवन और स्वाभाविक प्रवृत्ति के ज्ञान की दृष्टि से ही हमें काम करना है। ...

पूर्व-बुनियादी शाला के साधन : ६ :

पूर्व-बुनियादी वर्ग में साधनों की आवश्यकता जरूर है, लेकिन वे साधन बच्चों की सजग इन्द्रियों को और बुद्धि को बढ़ानेवाले हों। देहाती बच्चा तो अपना शिक्षक आप ही बनता है। पेड़, पत्ती, कीचड़, मिट्टी, धूल, कङ्कड़, पत्थर इत्यादि सभी चीजें उसके खेल और शिक्षा के साधन हैं। श्री आशादेवी ने अपने एक भाषण में बताया था कि बच्चे की जेब में ऐसी कई चीजें रहती हैं, जो हमारी दृष्टि से निकम्मी होती हैं। परन्तु वही बच्चों के विकास में सहायक होती हैं।

पूर्व-बुनियादी का शिक्षक जब किसी देहात में जाकर बाल-घर का प्रबन्ध करता है, तो साधन कैसे जुटाये, कहाँ से लाये या बनाये, कौन से साधन शाला में रखने लायक हैं और कौन-से नहीं—ये सारे प्रश्न उसके सामने हरदम रहें। क्योंकि उसके साधन किसी बाजार में बने-बनाये नहीं मिलेंगे।

शिक्षक को बच्चे के इर्दगिर्द की वास्तविकता को नहीं भूलना चाहिए। जो भी साधन हों, वे बच्चे के स्वाभाविक जीवन से सम्बन्धित हों। उसकी सब क्रियाएँ प्रत्यक्ष, उपयोगी और ज्ञान बढ़ानेवाली हों। देहात में खर्चीले और शहरी ढंग के साधन सच्ची शिक्षा के साधन नहीं बन सकते। देहात के स्वाभाविक वातावरण में जुटाये हुए साधन मामूली ही क्यों न हों, यदि वे बच्चों की बुद्धि के विकास के लिए उपयुक्त हों और उन्हें खेल का आनन्द दे सकें, तो बस है।

साधन बच्चे की प्रवृत्ति के पोषक होने चाहिए। वे उसकी उत्सुकता बढ़ानेवाले तथा इन्द्रिय-शिक्षा देनेवाले हों। पूर्व-

बुनियादी के पाठ्यक्रम में बताये गये साधन पाँच विषयों में विभाजित हैं : सफाई, भोजन, पानी, दस्तकारी और बागवानी। ये सब खेल के समान ही हैं। दाँतौन, कंघी, तेल रीठा, साबुन, सफेद मिट्टी या केले की राख, जिससे शरीर और कपड़े की सफाई आसानी से हो सके। उसके बाद शाला की सफाई के साधन जैसे झाड़ू, टोकरी, बाल्टी आदि। ये सब साधन बच्चों के उपयोग के लिए हैं। इसलिए आकार में उनकी सहूलियत को समझकर उनके माफिक बनायें और बच्चों को स्वयं उपयोग करना सिखायें। पानी साफ पीना है, इसलिए पीने के पानी की हिफाजत बच्चे और शिक्षक मिलकर करें। भोजन हम शाला में नहीं दे सकेंगे, लेकिन नियमित और संतुलित भोजन करने की जानकारी देना जरूरी है। अनाजों की पहचान भी सिखाना जरूरी है। देहात के बच्चे अनाज, देहाती फल, साग-सब्जी आदि चीजों को खूब जानते हैं, लेकिन खाने का तरीका या प्रमाण नहीं जानते। यदि घर से थोड़ा नाश्ता, जो वे ला सकें, उन्हें लाने को कहा जाय और सबके साथ बैठकर ठीक ढंग से खाना बताया जाय, तो यह एक अच्छा पाठ हो सकता है। यदि शाला में प्रबन्ध होने की गुंजाइश हो, तो नाश्ता या एक वक्त भोजन या दूध बच्चों को देना बहुत ही अच्छा है, बहुत जरूरी भी है।

जैसे सफाई और भोजन के साधन हैं, वैसे ही काम के भी साधन हैं। लेकिन बच्चा उस उम्र में काम और खेल को अलग-अलग नहीं समझता। वह तो घर या पास-पड़ोस में जो देखता है, उसीकी नकल करता है। जैसे बढ़ई की तरह चीजें बैठायेगा, बनिया की तरह बोलेगा, कपास साफ करेगा, ओटेगा, तकली बनायेगा, घुमायेगा, मिट्टी के बर्तन या कई चीजें बनायेगा, रङ्ग भरेगा, वर्तन धोयेगा, पिरोयेगा, गिनेगा, चीजें उठाकर सजायेगा। इतनी चीजें काम करने की प्रवृत्ति को बढ़ाने के लिए

पर्याप्त हैं और इन्हें साधनरूप में रखना चाहिए। पर इसका ध्यान रखना चाहिए कि इन चीजों में कोई भी चीज ज्यादा खर्चीली या बाहर की न हो। देहात के जीवन में ये सब चीजें रोज के काम में आनेवाली हैं। तराजू बाँस की बन सकती है। बाँस के छोटे टुकड़े बनाकर, रँगकर माला बना सकते हैं, बाँस के टुकड़ों से घर जमाने के ब्लाक बना सकते हैं, टोकरी और चटाई बना सकते हैं, झाड़ू बन सकती है, मिट्टी की तकली और बाँस की डंडी लगाकर सूत निकालना बड़ा आसान है, उसमें ज्यादा गति न होने के कारण सूत बारीक निकलता है। कपास तौलना, बिनौला तौलना आदि काम हो सकता है। बच्चों के खिलौने जैसे गाड़ी, बैल, चाक और डंडी वगैरह सामान तैयार करें, जिससे वे अपनी बढ़ईगिरी का अच्छा उपयोग कर सकें। मिट्टी के बर्तन आकार-ज्ञान के लिए अच्छे होते हैं। उन्हें देखकर बच्चे भी मिट्टी से अपनी चीजें बना सकेंगे। ओटाई की सलाई, पटरी का उपयोग चार साल का बच्चा खूब अच्छी तरह से कर सकता है और तोला दो तोला कपास भी ओट लेता है।

बगीचे का काम, पानी लाने का काम, पोतने का काम, कपड़े धोना, बर्तन माँजना बच्चों के प्यारे काम हैं। ५-६ वर्ष का बच्चा रसोई के काम में खासी दिलचस्पी लेता है। इसलिए इनमें से सहूलियत के मुताबिक जितना जुटा सकें, जुटायें। अभी हम सिर्फ साधन के बारे में सोच रहे हैं। इसमें माँ-बाप जितना सहयोग हमें दे सकें, उतना सहयोग हम उनसे लेने की कोशिश करेंगे। बच्चे का कपड़ा उतारना, खोलना, बाँधना, धोना, सुखाना, तह करके रखना और पहनना—सभी क्रियाएँ शाला में हो सकें, ऐसी गुंजाइश शाला में होना जरूरी है। वैसे ही घर का पाखाना और पेशाब-घर ऐसा बनाया जाय, जिससे संयुक्त खाद बनाने की प्रक्रिया बच्चे देख सकें। खेल के लिए सीढ़ी, झूला, घसरण्डी

आदि हो तो लगाना अच्छा है, नहीं तो खेल-कूद के दूसरे कई खेल बच्चों को सिखा सकते हैं।

सब साधनों को जुटाने की जरूर कोशिश की जाय और इनका उचित उपयोग करने की शिक्षा भी बच्चों को देनी चाहिए। लेकिन अगर इनमें से कुछ ही साधन हमारे पास हैं, तो और साधनों के अभाव में बच्चों की शिक्षा रुकनेवाली चीज नहीं है। हमारी यही कोशिश रहनी चाहिए कि बच्चे हमारे हाथ आ जायँ। उन्हें पाखाने का, दाँतौन का तथा कंघी का उपयोग करना सिखा दें। गाना और खेल सबके साथ मिलकर करें। बच्चे इतना भी शुरू में सीखें, तो काफी है। इन्द्रिय-ज्ञान और बुद्धि के विकास में देहात के बच्चे शहर के बच्चों से ज्यादा फुर्तीले और चतुर होते हैं, लेकिन कुछ समय के बाद इर्दगिर्द के वातावरण के कारण इनकी बुद्धि मन्द होती चली जाती है। इसलिए हमें शुरू से ही उन्हें हाथ में लेना है।

यदि शिक्षक साधनों पर निर्भर रहता है, तो धीरे-धीरे शिक्षा में साधन ही मुख्य स्थान ले लेता है। बच्चे के लिए साधन बनने के बदले साधनों के लिए बच्चा बन जाता है।

बच्चों की जरूरतों के साधन जुटाने में ही शिक्षक की कुशलता है। पूर्व-बुनियादी या बुनियादी शालाओं में शिक्षक से हद से ज्यादा अपेक्षा की जाती है। यहाँ शिक्षक तो माता, पिता, मित्र, बन्धु, सहायक और सेवक के रूप में ही आते हैं और उन्हें अपनी जिम्मेदारी भलीभाँति समझकर चलना है। इसलिए पूर्व-बुनियादी बालघरों में बच्चों की शिक्षा में साधनों की अपेक्षा शिक्षक की कार्यकुशलता को ही ज्यादा महत्त्व है। ...

काम के तरीके और साधनों का उपयोग : ७ :

इस शाला में वर्ग की व्यवस्था, समय-पत्रक, साधनों का उपयोग कैसा हो, यही प्रश्न अब बाकी रह जाता है। ढाई साल से लेकर छह साल तक के बच्चे पूर्व-बुनियादी में होंगे। उनके दो विभाग करना जरूरी है। बिलकुल छोटे बच्चों के सामने कोई निश्चित काम या खेल नहीं रखा जा सकता। उनके चारों तरफ का वातावरण ऐसा बनाया जाय कि वे मनचाहे ढंग से खेल सकें और खिलाये जा सकें।

जिस जगह यह वर्ग हो, वह चाहे खुली जगह ही क्यों न हो, काफी लम्बी-चौड़ी और साफ-सुथरी होनी चाहिए। इसका प्रमाण बच्चों की संख्या पर निर्भर है; ऐसा हो कि सब बच्चे आसानी से घूम-फिर सकें। हरएक साधन अमृत के समान और स्वच्छ हो तथा व्यवस्थित रूप में रखा हो। इनकी रचना में ही कुशलता है। यदि हम चाहते हैं कि बच्चा खेल या काम में मग्न हो जाय, तो उन चीजों को सजाने का तरीका बड़ी समझदारी का होना चाहिए, ताकि बच्चा देखते ही अपने मन का काम उठा ले। कोई भी चीज वहाँ ऐसी न हो, जो बच्चे के उपयोग की न हो या उसके चलने-फिरने में बाधा डालनेवाली हो। चीजें ऐसी जगह रखी जायँ कि बच्चे के लेने में दिक्कत न हो, किसीसे माँगना न पड़े। चीजें इस ढंग की हों कि देखते ही बच्चे को पता लग जाय कि अमुक वस्तु का अमुक उपयोग है।

शिक्षक का काम सिर्फ इतना ही है कि वह बच्चों को चीजों के उपयोग का ठीक तरीका बताये। एक-दो बार बताने पर बच्चा

खुद उसे दोहराता रहता है। वही उसकी शिक्षा है। शिक्षक को हमेशा सतर्क रहना चाहिए कि बच्चा किसी चीज का दुरुपयोग तो नहीं कर रहा है। बच्चा चीजों को बिना रोक-टोक के लेकर खेले और फिर उन्हें यथास्थान रख दे, ऐसी आदत उनमें डालनी चाहिए। वह चीज को उठाकर फेंका करे और जहाँ-तहाँ छोड़कर चला जाय, यह आदत बुरी है। यह विध्वंसक प्रवृत्ति है। शिक्षक को शान्ति से, लेकिन दृढ़तापूर्वक चीजों के ठीक उपयोग करने का तरीका बताना चाहिए और उपयोग करने की आदत लगानी चाहिए।

चार से छह साल के बच्चे थोड़ा नियमित काम कर सकते हैं। शाला-सफाई, बर्तन-सफाई, बागवानी, नाप-तोल, कपास-ओटाई, चित्रकला का ज्ञान, मिट्टी आदि का काम वे आसानी से कर सकते हैं। उनकी हैसियत के मुताबिक शिक्षक उन्हें थोड़ा-थोड़ा काम दे, तो वे बड़ी खुशी से और जिम्मेदारी के साथ ऐसे काम कर सकते हैं। उनमें भी टोली-नायक बनाकर वर्ग की व्यवस्था, पानी की व्यवस्था, चीजों की व्यवस्था और सजावट, सफाई की व्यवस्था आदि कामों को बाँट देना चाहिए। एक बार आदत बन जाय और बच्चे काम के तरीके समझ लें, तो शिक्षक के लिए बहुत कम काम रह जाता है। लेकिन सिर्फ काम लेना या करवाना ही शिक्षक का उद्देश्य न होना चाहिए। बच्चों में जिस काम की प्रवृत्ति या स्वाभाविक गुण हों, उन्हींके प्रकाशन का अवसर देकर उनके विकास में मदद पहुँचाना भी उनका उद्देश्य है। कभी-कभी ऐसा देखा जाता है कि बच्चा ऊबकर काम छोड़कर चला जाता है, इसका कारण समझते हुए बच्चे से वह काम करवाना जरूरी था या नहीं, यह बात शिक्षक को समझना है। कभी-कभी बच्चा भावनावश काम छोड़ देता है, तो शिक्षक को क्षमाभाव से उसे बर्दाश्त कर लेना चाहिए। लेकिन आलस्य

या नफरत के कारण छोड़ता है, तो काम करवाने का तरीका सुधारकर वह काम करवा लेना चाहिए।

समय-पत्रक के बारे में तो हमें खूब सोचना है। दूसरी शालाओं में तो बच्चे निश्चित समय पर आते हैं और निश्चित समय पर चले जाते हैं। वहाँ कुछ ही घंटों का सवाल रहता है, पर यहाँ तो बच्चों का जीवन शाला के जीवन से सम्बन्धित है। हमारा समय-पत्रक दस से पाँच तक ही नहीं, बल्कि सुबह से शाम तक का होता है। बच्चा सुबह कब उठता है, पाखाना कहाँ जाता है, कब हाथ-मुँह धोता है, कब और कैसे नहाता है, किस तरह नाश्ता करता है आदि सभी बातों पर ध्यान देना होता है और उनके माँ-बाप को समझाना है। इसलिए हमारा गाँव में जाना जरूरी है। शहरों में यह काम नहीं हो सकता, पर छोटे देहात में यह काम आसानी से हो सकता है। इससे हमारा घर-घर से परिचय होता है। कौन बच्चा बीमार है, उसकी देखभाल किस तरह हो रही है, इन सबकी जानकारी हमें होती है। हफ्ते में एक दिन ग्राम-सफाई का भी काम रहे और उसमें बड़े बच्चे भी भाग लें। इस काम में आध या पौन घंटे से अधिक समय देने की आवश्यकता नहीं है।

बाल-वर्ग के बच्चे ८॥ बजे से १०॥ तक शाला में रहें। उनकी सफाई, खेल, गान, आदि जो निश्चित कार्यक्रम हों उसके बाद यदि वे घर जाना पसन्द करें, तो उन्हें घर भेज दिया जाय या वे स्वयं शाला में खेलना चाहें, तो उन्हें खेलने दिया जाय। हमारे सम्पर्क में बच्चा दो घंटे भी रहे तो काफी है। बाकी समय हम उसके घर का वातावरण बनाने में लगा दें।

जब शाला में काम शुरू होता है, तब उसके समय का बँटवारा बच्चों की उम्र के मुताबिक और काम के तरीके को समझकर करना चाहिए। बच्चे की जरूरतों को समझकर काम कराना

उचित है। हमारे पास इतना समय है और इतना काम है, इसलिए ऐसा समय-पत्रक बनाया गया है, ऐसा नहीं होना चाहिए। हमें काम और बच्चों की मनोवृत्ति के मुताबिक समय-पत्रक बनाना चाहिए। सबसे पहले बच्चों की जरूरत को समझकर ये बातें होनी चाहिए। समय-पत्रक में अदल-बदल होना जरूरी है, लेकिन वह बहुत जल्दी-जल्दी बदला जाय या बहुत देर तक एक ही ढंग पर चले, ऐसा नहीं होना चाहिए। समय-पत्रक ज्यादातर मौसम और देहाती जीवन की स्वाभाविकता से मेल-जोल रखनेवाला हो, नहीं तो माँ-बाप के काम और शाला के काम का मेल नहीं बैठता। हरदम देखा जाता है कि देहात की शाला की हाजिरी मौसम के अनुसार बदलनेवाले माँ-बाप के काम पर निर्भर करती है। हमें इसको भी समझना है।

साधनों का उपयोग हर क्रिया से सम्बन्धित है, जैसे दाँतौन का उपयोग दाँत साफ करने के लिए है। अगर बच्चा दाँत साफ करके आता है, तो फिर दाँतौन की क्या उपयोगिता है? लेकिन यह प्रश्न उठता है कि घर में माँ को इतना समय कहाँ कि वह बच्चे को दाँतौन कराना सिखाये। दाँत साफ करना अलग बात है और दाँत किस तरह साफ किया जाता है, यह सिखाना अलग बात है। दाँतौन या दन्तमंजन करवाना और उसका उपयोग समझाना चाहिए। कंघी करना, नहाना, कपड़े धोना—समय-समय पर शाला में इन कार्यों के द्वारा इनके महत्त्व को समझाते रहना चाहिए। उपर्युक्त बातों का महत्त्व और उनका ज्ञान बढ़ाते रहना हमारा कर्तव्य है।

ऊपर बतायी हुई क्रियाएँ अब भी घर-घर में होती हैं, लेकिन कपड़े साबुन लगाकर या उबालकर धोने के ज्ञान का उपयोग बहुत कम लोग करते हैं। लड़कियों के सिर से जूँए तो मिट ही नहीं रहे हैं। नहाना तो इस तरह होता है कि आज देहात

में खुजली और दाद घर-घर में फैले हैं। इन बुराइयों को यदि हमें दूर करना है, तो बच्चों द्वारा सफाई—स्नानादि प्रक्रिया का प्रचार करना होगा। बच्चे इन बातों को सीखेंगे और अपने माँ-बाप को भी सिखायेंगे। इसी तरह साधनों के द्वारा ज्ञान बढ़ाना हमारा उद्देश्य होना चाहिए। यह उद्देश्य सिद्धान्त बताने से नहीं, काम कराने से ही पूरा होगा। प्रत्यक्ष काम द्वारा ही शाला की शिक्षा का कार्यक्रम बढ़ता रहेगा।

झाड़ू और टोकरी के उपयोग को कौन नहीं जानता, लेकिन चहारदीवारी के बाहर भी इसका उपयोग है, इसे कौन जानता है ? देहात में कूड़ों के ढेर इसीके प्रमाण हैं, उन्हें मिटाना है।...

शिक्षक

: ८ :

पूर्व-बुनियादी शाला के शिक्षक की हैसियत क्या है, यह कहने की बात नहीं है। जब वह किसी ट्रेनिंग के लिए जायगा, तब उसकी काबलियत की जाँच दूसरे ढंग से होगी। लेकिन यदि देहात में जाना है, तब तो शिक्षक का सर्वव्यापी और स्नेह-युक्त होना जरूरी है। उसे यह न समझना चाहिए कि वह किसी निश्चित समाज का निश्चित कार्य करने जा रहा है, बल्कि वह देहात के हरएक बच्चे का, चाहे वह शाला में आता हो या नहीं, मित्र, सहायक, सेवक और सच्चा शिक्षक बनकर जा रहा है। वहाँ का वातावरण बदल देने की उसमें क्षमता होनी चाहिए। स्वयं उदाहरण रूप से वह माँ-बाप तथा अन्य प्रौढ़ों को उनकी जिम्मेदारी की जानकारी देने जा रहा है। इसलिए उसे खुद आदर्श जीवन बिताने की कोशिश करनेवाला होना चाहिए।

हम जानते हैं कि देहात में हमें जिस शिक्षा का प्रचार करना है, वह कितने धीरज का कार्य है। वहाँ दूषित वातावरण फैला हुआ है। कूड़े के ढेर के साथ गंदी आदतें भी भरी पड़ी हैं। आलस्य तो प्रौढ़ों के जीवन का साथी बन गया है; उसीके साथ भेदाभेद, जात-पाँत, अमीर-गरीब—सभी लगे हैं। बच्चों की दुनिया में प्राकृतिक प्रवृत्तियाँ एक-सी होती हैं, भेदभाव नहीं रहता। वह एक सच्चे साम्यवाद का समाज है। पर धीरे-धीरे भेदभाव के कारण सात-आठ साल का बच्चा भी भेदभाव मानने लगता है, अमीर-गरीब के अन्तर को समझने लगता है। इस तरह वह भी दूषित वातावरण फैलाने में मददगार होता है।

जो शिक्षक गाँव में जाय, वह यह समझ ले कि उसे दृढ़ता के

साथ भेदभाव मिटाना है। समतापूर्वक चारों तरफ एक-सा कदम बढ़ाना है। ऐसी हालत में उसमें विरोध सहने की और बच्चे में शारीरिक तथा बौद्धिक विकास के लिए उपयुक्त वातावरण निर्माण करने की शक्ति होनी चाहिए। उसे देहात के जीवन से परिचित होना चाहिए, उसकी कमियों और शक्ति की जानकारी रखनेवाला और उत्साही कार्यकर्ता होना चाहिए।

उसके चरित्र और वातावरण के सम्बन्ध में मोटे तौर पर उपर्युक्त बातों के साथ प्रत्यक्ष काम का ढंग कैसा हो, यह बताना भी जरूरी है। जिस गाँव में हम काम करने जाते हैं, वहाँ की जनता के व्यवहार से तुरत यह पता चल जाता है कि वह हमारा स्वागत करती है या हमें सशङ्कित नजरों से देखती है।

गाँव में प्रवेश का सबसे उत्तम साधन है, बच्चा। यदि बच्चे हमारे पास आने लगें और उनसे हमें स्वागत मिला, तो डरने की कोई बात नहीं रहती। बच्चे के साथ ही धीरे-धीरे माँ-बाप से परिचय हो जाता है। हम एकदम पूरे देहात को हाथ में नहीं ले सकते, इसलिए दो-चार कुटुम्ब से अच्छा परिचय बढ़ा लें, जिससे वह हमारे काम में सहयोग देनेवाले तथा हमारे काम से सहानुभूति रखनेवाले बन जायँ। इस तरह गाँव के कुछ लोगों का समर्थन प्राप्त कर लेने पर काम करने की हिम्मत बढ़ती है। धीरे-धीरे उन्हींके द्वारा पूरे गाँव का परिचय हो जायगा और दूसरे लोगों को भी हमारे काम की जानकारी हो जायगी। शिक्षक का हरदम यह प्रयत्न रहे कि मित्रों की संख्या ज्यादा-से-ज्यादा बढ़े, लेकिन इसका मतलब यह नहीं कि हम मित्र बनाने के कार्य में अपने उद्देश्य को भूल जायँ। हमारा उद्देश्य तो है देहातों को सजग करना और इस कार्य के लिए जितने मददगार मिलें, उन्हें जुटाना। हमें गाँव का वातावरण बनाना है।

इसके बाद शाला का काम शुरू होता है। हमें बच्चों को

जुटाना है। सभी माँ-बाप इसका महत्त्व नहीं समझते। उनके सम्पर्क में आने के लिए बच्चों के घर का निरीक्षण करने का तरीका अच्छा है। शिक्षक सुबह के समय बच्चों के घर पर चक्कर लगाये, उन्हें जगाये और शाला में आने के लिए प्रोत्साहित करे। माँ-बाप की घरेलू बातों में भी थोड़ा हिस्सा ले। बच्चे के सम्बन्ध में दो-चार बातें कह दे। इस तरह बच्चे के घर और कुटुम्ब के निरीक्षण का उसे मौका मिलता है। बच्चा क्या खाता है, कब सोता है, कब और क्यों बीमार हुआ, घर तथा उसकी आदतें आदि सभी बातें इस तरह मालूम हो जाती हैं। बाद में धीरे-धीरे आरोग्य, सफाई, खाना, कपड़ा आदि के बारे में चर्चा कर सकते हैं।

कभी-कभी किसी घर उत्सव, त्योहार पर ऐसा कार्यक्रम रखकर माँ-बाप को निमन्त्रित करें या रोजाना चलनेवाले शाला के समय आकर सहजभाव से देखने को बुलायें। वे जब देखेंगे कि बच्चे कौन-सा खेल खेलते हैं, क्या काम करते हैं, गुरुजी उनकी देखभाल किस तरह करते हैं, तो उसका असर अच्छा होगा। इससे माँ-बाप को भी बच्चों की जरूरतों का थोड़ा ज्ञान होगा। माँ-बाप और शिक्षक के इस मेल का अनुभव कर बच्चे का शाला के प्रति स्नेह ज्यादा-ज्यादा बढ़ता जायगा। इस तरह अगर माँ-बाप हमारी विचारधारा में सहयोग करनेवाले हो गये, तो शिक्षा का काम ही आसान हो जायगा। बच्चे के साथ मित्रभाव बढ़ाने की चतुराई और नयी समाज-रचना का दृष्टिकोण होगा, तो शिक्षक के लिए यह सब सहज साध्य हो जायगा।

अब बच्चों के साथ के व्यवहार की भी बात सोचनी होगी। शिक्षक बालक का मददगार है, वह उन्हें कोई नयी बात नहीं

सिखा सकता, जब तक कि उनकी जिज्ञासा-वृत्ति जाग्रत न हो जाय।

अपने प्रत्यक्ष काम द्वारा शिक्षक बच्चों का आदर्श बनता है। बच्चे बड़ों की नकल करते हैं, इसलिए शिक्षक का काम में लगे रहना बच्चों के लिए आदर्श बन जाता है। जो शिक्षक बच्चों से काम करवाने की अपेक्षा रखता है, उसकी व्यवस्थित रचना या योजना बच्चों के सामने रखने की कुशलता शिक्षक में होनी चाहिए। जो काम नहीं कराना चाहते हों, उसके बारे में किस तरह बताया जाय, इसे समझाने की भी बुद्धि होनी चाहिए। शिक्षक की वृत्ति हमेशा शान्त और उल्लसित रहनी चाहिए। छोटे बच्चे गम्भीरता बर्दाश्त नहीं कर सकते। निरर्थक हुक्म देना या जो कुछ बतलाना हो, उसके बदले कुछ और बतला देना ठीक नहीं होता। बच्चे सच्चा जवाब चाहते हैं और ऐसे शिक्षक पर उनकी श्रद्धा होती है, चाहे वह शिक्षक कठोर ही क्यों न हो। इस तरह बच्चे की मनोवृत्ति को समझकर शिक्षक को शाला के वातावरण में श्रद्धा और स्नेह निर्माण करना चाहिए तथा अपने बर्ताव से बच्चे को अपना लेना चाहिए। ...

क्रिया	साधन	विषय-ज्ञान
शरीर सफाई—दाँत, हाथ, पाँव, मुँह धोना। बाल सँवारना–नाखून काटना।	डौला, पानी, दाँतौन, तौलिया, साबुन, मंजन आदि। तेल, कंघी, शीशा, जूआँ मारने की दवाई, कैंची, चाकू।	दाँत कैसे माँजना और धोना; नाक, मुँह और कान कैसे साफ करना। कुल्ली करना, धोना, पोंछना, नहीं करने से बीमारियाँ, बाल कैसे सँवारना, धोना।
कपड़े की सफाई, कपड़ा धोना।	साबुन, सोडा, रीठा, हिंगानबेट, राख, गमला, बालटी, रस्सी।	कपड़े कैसे धोना, सुखाना, तह करना, पहनना, धोने की चीजों की पहचान और इस्तेमाल करने का तरीका।
शाला सफाई—झाड़ना।	झाड़ू, टोकरी, खराटा, फावड़ा।	मिल-जुलकर काम करना, साफ-सुथरे स्थान और वातावरण में रहना और उसका शरीर और बुद्धि पर असर।

अनाज-सफाई— फटकना, चुनना।	सूप, टोकरी, नपना, अनाज।	अनाजों की पहचान, नापना, तौलना, भरना, खेती की कुछ बातें जानना।
पानी भरना, छानना।	ढकना, मटका, रस्सी, बालटी, डौला, बर्तन साफ करना, छानने का कपड़ा, गिलास।	पानी कैसे साफ रखा जाय, गंदे पानी से बीमारियाँ फैलती हैं, बीमारियों के नाम।
कताई, कपास-सफाई, ओटाई, पुनाई।	चटाई, कपास, सलाई पटरी, गत्ता, ओटनी, तकली, टोकरी, तराजू, धनुषतकली।	सामान्य विज्ञान, गणित, भाषा, सामाजिक व्यवहार का अभ्यास।
रचनात्मक खेल	खपरैल के टुकड़े, रंगीन पत्थर, शंख, सीप, हंडो, मिट्टी के बर्तन, लकड़ी के टुकड़े, बैलगाड़ी, गुरगुड़ी, बाँस, मणी, फूल, पत्ती, बाँस की तराजू, चक्की, थैलियाँ।	सजाना, तकली बनाना, तोलना, मिट्टी के बर्तन बनाना, अलग-अलग हिस्से खोलकर बैठाना, पिरोना, पीसना, भरना।
बागवानी— बगीचा लगाना।	कुदाली, फावड़ा, खुरपी, बीज, झारा, रस्सी।	बीज बोना, खोदना, गोड़ना, पानी देना, बीज की पहचान, नापना, नालियाँ बनाना।
संगीत, गाना	ढोलक, खंजरी, करताल, एकतारा, गंग।	संगीत, भजन, अभिनय, नृत्य, टिपरी।

चित्रकला	खडिया मिट्टी का खपड़ा, लकड़ी की पटरी, मिट्टी की कटोरी, रंग, देहाती पेड़ या बाँस की बनायी तूलिका, रंगीन सूत, कागज, कपास इत्यादि।	चित्रकला, रांगोली, अल्पना इत्यादि कला, हस्तकौशल।

...

उद्योग के साधन

मिट्टी का काम :—

खिलौने बनाने की पटरी १०, मिट्टी छानने के कुण्ड २, ईंट का फरमा ४।

रंग का काम :—

चूल्हा, गेरू, पीली मिट्टी, सफेद मिट्टी, काजल का कलछुल, कुप्पी १०, मिट्टी के बरतन, रंग भिंगोने को मटके।

कताई :—

सलाई पटरी ५, तकली २०, पूनी की सलाई १०, धनुष तुनाई ५, वराईची चरखा ५, गत्ते।

सिलाई :—

टाट—सुतली—सूया १०, सुतली रँगने के लिए रंग, छेददार गत्ते या पटरी, कैंची १।

अनाज-सफाई के लिए :—

तश्तरी १२, थाली २, टोकरी या सोउनी, कंकड़ डालने को टीन का डाला।

जरूरत के मुताविक और प्रांत के रिवाज के अनुसार

सब्जी काटने को :—

छूरी, पँहसुल, पटरे, टोकरी, चक्की, सिलबट्टा, मूसल, सूप, चलनी।

शिक्षा के साधन

आँख के लिए :—

प्रकृति-परिचय द्वारा वस्तु और रंग का परिचय।

कान के लिए :—

आवाज की घंटी या घुंघरू।

बच्चों की सफ़ाई

चीजें जरूरत के मुताबिक तथा जितनी मिलें, रखें

सिर की सफ़ाई :—

कंघी, शीशा बड़ा १, तेल के लिए शीशी १, चोटी के लिए सुतली, रंग की टोकरी १, शीशी टाँगने की खूँटी १, सफेद कपड़े के मामूली चौकोन टुकड़े, रीठा, आँवला, साबुन, शिकाकाई।

नाखून की सफ़ाई :—

कैंची छोटी।

शरीर-सफ़ाई :—

मिट्टी का घड़ा, बाल्टी २, गिलास १, कपड़े के टुकड़े, बाल्टियाँ छोटी, गिलास, तौलिया।

कपड़े धोने का सामान :—

सोड़ा, रीठा, केले की राख, सफेद मिट्टी, कपड़ा सुखाने की रस्सी, बाँस रस्सी बाँधने के लिए।

बच्चों द्वारा सफ़ाई के लिए साधन

जरूरत के मुताबिक

आँगन-सफ़ाई के लिए :—

झाड़ू, खुरपी, फावड़ा, कुदाल, झब्ली।

कमरे की सफ़ाई के लिए :—

झाड़ू बाँधने को बाँस, छोटी झाड़ू, कचरा उठाने की टोकरी या सूप।

स्पर्श के लिए :—

निसर्ग के अनेक नमूने, जैसे पेड़, पत्ती, फूल आदि ।

स्वाद के लिए :—

खट्टा, मीठा, नमकीन, कड़ुवा स्वाद देनेवाली चीजें ।

गंध के लिए :—

फूल, पत्ती आदि ।

पानी पीने के साधन :—

स्टैंड, पानी निकालने की परी, मटके के नीचे रखने के लिए मिट्टी के बरतन या बाल्टी, मटके ढक्कन के साथ, गिलास ।

खेल-कूद के साधन

जरूरत के मुताबिक

डंडे	मँजीरा
ढोलक	खंजरी
छोटे-छोटे घड़े २	घसीटना
झूला	कूदने की रस्सी

पेड़ के साथ सीढ़ी या लकड़ी के साथ सीढ़ी दो

कैंची बड़ी १

सुतली	टाट २० गज
गोंद	रजिस्टर
कलम-दावात	पेंसिल
सूई-तागा	फाइल ३

...

पूर्व-बुनियादी

•

दूसरा खण्ड

प्रत्यक्ष काम

•

पूर्व-बुनियादी तालीम के पीछे एक बहुत बड़ी विचारधारा है और फिर उन सबको लेकर एक योजना बनती है—पिछले भाग में हमने इसे विस्तार के साथ देखा है। परन्तु इन विचारों को, इन सिद्धान्तों को व्यवहार में लाने के लिए क्या-क्या प्रयोग किये गये और उनके परिणाम क्या निकले—इसका विवरण आगे के पृष्ठों में दिया गया है।

•

बच्चों की तालीम के एक साल का प्रयोग

(जुलाई १९४५ से अप्रैल १९४६ तक)

पूर्व-बुनियादी शाला, सेवाग्राम

मई १९४४ में जब गांधीजी जेल से बाहर आये, तो उनके पहले बयानों में से एक बयान नयी तालीम के बारे में था। उसमें उन्होंने कहा : "अपनी कैद में मैं नयी तालीम की मुमकिनात (सम्भावनाओं) के बारे में बराबर सोचता रहा और मेरा दिमाग बेकरार हो गया। हमको अपनी मौजूदा हासिलात से सन्तोष मानकर अपने काम पर यहीं नहीं ठहर जाना चाहिए। हमको बच्चों के घरों तक पहुँच जाना चाहिए। उनके माँ-बाप को शिक्षा देनी चाहिए। नयी तालीम तो जीवनभर की तालीम होनी चाहिए। यह अब मुझे बिल्कुल स्पष्ट हो गया है कि नयी तालीम का क्षेत्र अवश्य बढ़ना चाहिए। उसमें जिन्दगी की हरएक हालत में हरएक व्यक्ति की शिक्षा का प्रबन्ध होना चाहिए।......नयी तालीम का शिक्षक सबको तालीम देनेवाला शिक्षक हो।"

अब तक तालीमी संघ की तरफ से सिर्फ ७ साल से १४ साल तक के बच्चों की तालीम का काम चलता था। लेकिन हम सबने यह महसूस किया था कि जब तक हम ७ साल से छोटे बच्चों की तालीम के काम को हाथ में नहीं लेते, तब तक नयी तालीम का काम अधूरा ही रहता है। इसलिए हमने पहले सेवाग्राम के बच्चों को लेकर ही इसका पहला प्रयोग करने का निश्चय किया। इस पुस्तक की लेखिका के मार्ग-दर्शन में नवम्बर १९४४

से यह काम शुरू हुआ। लेकिन नवम्बर १९४४ से अप्रैल १९४५ तक के समय को इसकी पूर्व तैयारी का समय समझा जा सकता है। जुलाई १९४५ से ही निर्दिष्ट ध्येय (मकसद) को सामने रखकर इसका बाकायदा काम शुरू हुआ।

एक बात ध्यान में रखने की यही है कि हमने, प्रयोग के पहले दिन से ही, बच्चों की तालीम और उनके माँ-बाप की तालीम; दोनों एक ही कार्यक्रम के दो पहलू हैं, ऐसा मानकर काम किया है।

[शिक्षक के एक साल के अनुभव का विवरण नीचे दिया जाता है। इस क्षेत्र में काम करनेवालों से निवेदन है कि वे अपने-अपने अनुभव 'नयी तालीम' आदि रचनात्मक पत्र-पत्रिकाओं में दिया करें।]

मैंने १९४४ से सेवाग्राम में श्रीमती शांता नारूलकर के मार्ग-दर्शन (देख-रेख) में सात साल से छोटे बच्चों की तालीम का काम शुरू किया। उस समय मेरे पास ६-७ साल की उम्र के १५-२० बच्चे थे। पहले मैंने खासकर गाँव, गाँव के बच्चे और उनके पालकों से परिचय प्राप्त करने का काम किया। सफाई, खेल, गाने, कपास-सफाई, रूई-सफाई और थोड़ा तकली पर कातना, इन्हीं बातों को लेकर बच्चों को तालीम देने की कोशिश की।

जुलाई १९४५ से एक विशेष मकसद के मुताबिक कक्षा का काम शुरू हुआ। कक्षा के उद्देश्य के मुताबिक २॥ से ६ साल के बच्चों की फेहरिस्त बनायी और वे बच्चे स्कूल में कैसे आयें, इसकी कोशिश की।

बच्चों के घर—इस साल हर रोज स्कूल शुरू होने से पहले एक घंटा वक्त दिया गया। इस समय में बच्चों की तालीम का मकसद और पालकों के कर्तव्य के बारे में पालकों से बातचीत

की। उसका उचित परिणाम हुआ। घर से बाहर न निकलनेवाले बच्चे भी स्कूल में आने लगे।

हाजिरी—बच्चों के दाखिल होने के लिए वर्ग वर्षभर खुला था। इस तरह साल के आखीर तक कुल ७२ बच्चे शाला से परिचित हो गये। काम के २१४ दिनों में हाजिर रहनेवाले बच्चों की संख्या अलग-अलग इस तरह है—

१०० से २०० दिन तक	१२ बच्चे
३० से १०० दिन तक	३६ बच्चे
१० से ३० दिन तक	१३ बच्चे

बाकी ११ बच्चे १० दिन से भी कम हाजिर रहे। वर्षभर में वर्ग की औसत हाजिरी २२ रही।

बच्चों का आरोग्य—सात साल से छोटे बच्चों की तालीम में उनका शारीरिक विकास सबसे बड़ी बात रहती है। इसलिए छोटे बच्चों के विद्यालय के साथ-साथ एक आरोग्य-केन्द्र की भी जरूरत रहती है। हमारे लिए सौभाग्य की बात यह थी कि सेवाग्राम के 'आरोग्य-मन्दिर' की तरफ से एक 'बाल-आरोग्य-केन्द्र' गाँव में ही खोला गया। उसमें श्रीमती बारबार हार्टलैंड नाम की अंग्रेज बहन काम करती थीं। उनके साथ मेरी पत्नी इस काम की ट्रेनिंग लेने गयी।

मेरा काम फिर इतना रह गया कि बच्चों की तन्दुरुस्ती का हिसाब रखना और जैसे-जैसे जरूरत पड़े, उनके पालकों को समझाकर बच्चों को आरोग्य-केंद्र में ले जाकर उपचार कराना। इसके साथ-साथ साथी के रोग से दूर रहने के लिए बच्चों को और पालकों को समझाने की कोशिश की।

हमारा सबसे पहला काम था, मामूली देहात के छोटे बच्चों की तन्दुरुस्ती की जाँच करना। इसमें उनके घर की हालत, घर की खुराक, नींद व आराम के घंटे, वजन, ऊँचाई आदि

का हिसाब और उनके सालभर की और हर साल होनेवाली बीमारियों का विवरण तैयार करना जरूरी है।

इन बातों को लेकर सेवाग्राम के बच्चों की जाँच करने की जो कोशिश की गयी, उसका थोड़ा-सा नमूना नीचे दिया जाता है:

शारीरिक विकास नं० १

(बाल-वर्ग, सेवाग्राम, सन् १९४५-४६)

क्रम	नाम	जन्म तारीख	नींद का वक्त, रात से सबेरे तक	नींद के घंटे	घर का रोज का भोजन	स्कूल में हाजिरी के दिन	स्वास्थ्य
१	श्रीराम	६-७-४०	९ से ७	१०	सादाआहार, मांस, मछली	१२५	रक्त की कमी
२	देविका	१-३-४१	९ से ६	९	,, ,, सबेरे दूध	२०३	नाक बहती है
३	मधुकर	१६-४-४१	८ से ७	११	,, ,,	१५१	आँव पड़ता है रक्त की कमी
४	मैत्री	१-७-४१	९ से ६	९	,, सबेरे दूध, दो बार चाय	८२	ठीक
५	गिरिधर	९-११-४१	८॥ से ६॥	१०	सादा भोजन	१५८	पेट साफ नहीं
६	रामराव	१७-२-४२	८॥ से ७	१०॥	,, ,,सबेरे चाय	१५१	हमेशा खुजली रहती है
७	ज्ञानराव	२४-६-४२	८ से ६	१०	,, ,,	१७७	ठीक
८	मात्रा	७-६-४२	८ से ७	११	,, ,,	८७	हमेशा खुजली रहती है

सूचना :—सादा आहार—दाल, ज्वारी की भाकरी (रोटी), भाजी, तेल। मांस मछली हफ्ते में एक बार (बाजार के दिन) खाते हैं।

शारीरिक विकास नं० २

(बाल-वर्ग, सेवाग्राम, सन् १९४५-४६)

क्रम	नाम	जन्म तारीख	छाती इंचों में	ऊँचाई इंचों में	वजन जुलाई	अगस्त	सितंबर	अक्तू.	नवंबर	दि०	ज०	फ०	मार्च	पसंदगी का खेल (प्रकार)
१	श्रीराम	६-७-४०	२१	३८||	—	—	२६	२५	२८	२८||	२७	२८	३०	बैठने का खेल
२	देविका	१-३-४१	२०	३९	२५	२६	२६	२५	२७	२७	२७	२९	२७	,,
३	मधुकर	१६-४-४१	—	—	—	२९	२५	२६	२५	२८	२८	—	२८	दौड़ने का खेल
४	बेबी	१-७-४१	१९	३९	—	—	२१||	२५	२६	२७	—	२७	२७	बैठने का खेल
५	गिरिधर	६-११-४१	२१	३८	२८	२९	३०	३०	३०	३०	२८	२९	२९	दौड़ने का खेल
६	रामराव	१७-२-४२	२०	३६	२५	२५	२५	२६	२५	२६	२५	—	२७	बैठने का खेल
७	जानराव	२४-६-४२	२०	३९	२५	२५	२६	२६	—	२६	२६	२७	२७	दौड़ने का खेल
८	बाबा	७-६-४२	१९	३६||	२२	२५	२४	२४	—	२५	२४	—	—	दौड़ने का खेल

नमूने के तौर पर सिर्फ ८ बच्चों की जानकारी दी है।

बीमारियों का तख्ता

१॥ से ७ साल तक के बच्चों की बीमारियाँ (सन् १९४५-४६)

अप्रैल	आँख की बीमारी, गोवर, कांजण्या, माता, खुजली, खवड़ा (इपिटाइगो), दाद, खाँसी, बुखार, पतला दस्त, कृमि, कान बहना
मई	आँख की बीमारी, गोवर, कांजण्या, माता, खुजली, खवड़ा, दाद, खाँसी, बुखार, पतला दस्त, कान बहना
जून	मलेरिया, खुजली, खवड़ा, दाद, खाँसी, पतला दस्त
जुलाई	मलेरिया, खुजली, दाद, मलबद्धता, पतला दस्त
अगस्त	मलेरिया, आँख की बीमारी, खुजली, खवड़ा, दाद, पतला दस्त, आँव और उलटी, निमोनिया
सितम्बर	मलेरिया, आँख, खुजली, खवड़ा, दाद, खाँसी, पतला दस्त, निमोनिया
अक्तूबर	मलेरिया, आँख की बीमारी, खुजली, खवड़ा, खाँसी, मलबद्धता
नवम्बर	आँख की बीमारी, खुजली, दाद, बुखार, खाँसी, पतला दस्त, खवड़ा
दिसम्बर	आँख, खुजली, दाद, खवड़ा, बुखार, खाँसी, पतला दस्त, कान बहना, गला फूलना, जलन
जनवरी	आँख, खुजली, दाद, खवड़ा, बुखार, खाँसी, पतला दस्त, कान बहना, उल्टी, जलना
फरवरी	आँख, गोवर, खुजली, दाद, खवड़ा, बुखार, पतला दस्त, कान बहना, जलना, कृमि
मार्च	आँख, गोवर, कांजण्या, माता, खुजली, खवड़ा, दाद, इन्फ्लुएंजा, खाँसी, गला फूलना, कान बहना, नाक से खून बहना

यह तो हुई बच्चों के आरोग्य की स्थिति। हमारे स्कूल का काम यह था कि इन बच्चों का समग्र रूप से हम शारीरिक विकास

किस तरह करें। इसके लिए सबसे बड़ा पहला साधन था, उनके माँ-बाप की शिक्षा। इसकी तरफ हमने पूरा-पूरा ध्यान दिया।

बच्चों के साथ पालकों की तालीम—बच्चों के द्वारा जैसे-जैसे पालकों का संबंध बढ़ता गया, वैसे-वैसे मौके के अनुसार उन्हें सफाई, बच्चों की शिक्षा, बच्चों के आरोग्य, बालसंगोपन, ग्रामोद्योग और खेती—इन विषयों के बारे में समझाया गया।

शिक्षक के लिए बच्चा ही प्रौढ़-शिक्षा की कुंजी है। वह बच्चों के साथ और उनके सम्बन्ध से पालकों के दिल में तथा उनके आँगन से चौके तक पहुँच सकता है। बिना स्वार्थ के अगर सेवा-भाव से वह प्रवेश करे, तो फिर उसे हर जगह आशा ही आशा नजर आयेगी।

जीवन-शिक्षण—पालकों के जीवन से बच्चों के जीवन में प्रवेश करने के लिए नीचे लिखी बातों का खास सम्बन्ध आता है—

(१) खाना-पीना, (२) कपड़े, (३) सेहत, बच्चों की हिफाजत, (४) खेती, गो-पालन, (५) सफाई और (६) पढ़ाई का शौक।

(१) खाना-पीना—बच्चों के लिए कौन-सी खुराक जरूरी है, कितनी बार देनी चाहिए, भोजन में सफाई, साफ पानी, बीमारी में क्या देना चाहिए, बीमारी से बचना—इन विषयों को मौका आने पर चर्चा करके समझाना।

(२) कपड़े—अनाज और कपड़ों की जरूरत और उसमें खादी के स्थान की चर्चा। बच्चों की मार्फत घर में चर्खे और खादी का प्रवेश कराना।

(३) सेहत—बच्चों की बीमारियाँ, छुआछूत के रोगों की चर्चा। घरेलू दवाइयाँ और दवाखाने में जाँच और इलाज—इनके बारे में चर्चा और सलाह।

(४) खेती और गो-पालन—अगर संभव हो, तो इस पर गहरी बहस करने का मौका तो आता ही है। यह आर्थिक सवाल होने के कारण पालक इस पर अधिक चर्चा करते हैं।

(५) सफाई—

(क) निजी सफाई—बच्चों को वक्त पर पाखाने भेजना, हाथ-पैर, मुँह धोना, दाँत साफ करना, बाल सँवारना, हरएक अवयव की सफाई कैसे करना—इसकी चर्चा और अमली तौर पर उसे समझाना। कपड़ों की सफाई के महत्त्व और स्थानीय साधनों के उपयोग।

(ख) आम सफाई—घर, कुँआ और आसपास की सफाई के बारे में चर्चा करना और अकेले या उनके साथ मिलकर, काम करके समझा देना।

(६) पढ़ाई का शौक—स्कूल में भेजने के लिए बच्चों में रुचि निर्माण करना।

इस काम के लिए रोज सुबह स्कूल के समय से पहले एक घंटा दिया गया। शिक्षक का सच्चा समाज-शिक्षण इसी समय होता है।

नाश्ता—बच्चों के शारीरिक विकास का दूसरा बड़ा साधन है, उनका भोजन। ऊपर दिये गये तख्ते से यह बात स्पष्ट है कि बच्चों को घर में जो भोजन मिलता है, वह उनके विकास के लिए पर्याप्त नहीं होता। बहुत ही थोड़े बच्चे ऐसे हैं, जिन्हें दूध मिलता है और फल का तो कहना ही क्या? यह कमी शाला के जरिये पूरी करने की कोशिश की गयी। प्रतिदिन दूध या केले-संतरे नाश्ते के तौर पर दिये गये। जितना दूध मिलता था, सब बच्चों को बाँट दिया जाता। सालभर में दूध का हर बच्चे पीछे औसत प्रमाण प्रतिदिन ७॥ तोले रहा। हरएक को एक-एक

फल दिया गया। हर बच्चे पीछे नाश्ते का औसत खर्च पाँच पाई हुआ।

बच्चों का वजन—हर महीने बच्चों का वजन लिया गया। जिनका वजन कम हुआ, उनके बारे में डॉक्टर से सलाह लेकर वजन बढ़ाने की कोशिश की गयी। कुछ दिन 'शार्क लिवर आइल' दिया, लेकिन वह सब बच्चों को रुचा नहीं।

तन्दुरुस्ती की जाँच—हर तीन महीनों में डॉक्टर से बच्चों की तन्दुरुस्ती की जाँच करायी गयी। बीमार बच्चों की दवाखाने से दवा करायी गयी।

साल के आखीर में बीमार बच्चों की सालाना कैफियत को देखकर यह ज्ञात हुआ कि पिछले वर्ष के मुकाबले में बच्चों के रोग, खासकर खुजली कम हुई।

शरीर की सफाई

उद्देश्य—बच्चों में अच्छी आदतें डालना।

जरूरत—बरसों से चलते आये रीति-रिवाज, आदतें ही सच्चा जीवन है, ऐसा लोग मानते हैं। बच्चों को बुरी आदतों से छुड़ाना और अच्छी आदतें सिखाना, यह हमारा पहला काम था। हमारे पास आनेवाले बच्चों में ७५ में से ४६ खुजली, खवड़ा (इम्पिटाइगो) और दाद—ये चमड़े की बीमारियाँ पायी गयीं। इनमें से २२ बच्चों को यह बीमारी सालभर रही। इसीलिए हमारे कार्यक्रम में शरीर-सफाई को पहला स्थान दिया गया।

घर में सफाई—बच्चे चार घंटे छोड़कर बाकी बीस घंटे घर या घर के आसपास ही बिताते हैं। इसलिए हर रोज शाला शुरू होने के पहले एक घंटा गाँव में दिया जाता है। बच्चों के

घर जाकर बच्चों की सफाई के बारे में जानकारी हासिल की। मौका पड़ने पर बच्चों के माँ-बाप के सामने उन्हें खुद साफ किया। इसी तरह बच्चे घर से ही साफ होकर शाला में आयें, ऐसी कोशिश की गयी।

शाला में सफाई—जो बच्चा किसी कारण से शाला में गंदा आता था, उसको मैं तुरन्त साफ करता था। जरूरत के मुताबिक बच्चों को नहलाया भी जाता था। हफ्ते में दो बार सामूहिक सफाई की जाती रही, जिससे बच्चे शरीर के हरएक अवयव (हिस्से) और सफाई के बारे में समझें और उन्हें साफ रहने की आदत हो जाय। बच्चों के कपड़ों की सफाई भी हफ्ते में एक बार शाला में की जाती रही।

नतीजा—साल के आखीर में सफाई का उद्देश्य कुछ हद तक पूरा हुआ-सा दिखाई पड़ा।

कपड़े की सफाई

देहाती साधन और तरीके-(१) रीठा (बाजार से लाये हुए)—बच्चों ने रीठे फोड़े। खेल के लिए बीज रख लिये। छिलका रातभर पानी में भिगोया। सवेरे मिट्टी के बर्तन में २० मिनट तक गरम किया, थोड़ा ठंडा होने के बाद हाथ से मलकर फेन (झाग) तैयार किया। बाद में जरूरत के अनुसार गरम पानी में डालकर उबाला। उसमें कपड़े डाले। नीचे उतारकर वर्तन में एक घंटे तक कपड़े रखे। फिर धोकर साफ किये। कपड़े उजले निकले।

प्रमाण—१ सेर रीठा, ६ तोले छिलका। छोटे कपड़े ४५ धोये।

(२) हिंगणवेट (हिंगोट)—(खेत से लाये हुए)—ऊपर का छिलका फेंक दिया। गुठली १५ मिनट पानी में भिगोयी, कपड़े

गीले करके साबुन की तरह लगाया। आध घंटे तक पानी में डालकर उबाला। फिर धोकर सुखाया। कपड़े साफ हुए।

(३) राख—(खेत से)—गाँव के आसपास मुफ्त मिलनेवाले अघाड़ा और गोखरू के पौधे लाये गये। जलाकर राख बनायी। रात को पानी में भिगोयी, जिससे क्षार पानी में घुल गया और चीजें नीचे बैठ गयीं। ऊपर का क्षार-पानी छान लिया। उसमें और अधिक पानी डाला और कपड़े डालकर आध घण्टे तक उबाला। फिर धोकर सुखाया। कपड़े साफ निकल आये।

(४) सोड़ा और साबुन—ऊपर की चीजें छोड़कर सोड़ा और साबुन का भी हमेशा की तरह उपयोग किया गया।

बच्चों का स्वावलंबन—बच्चा अपनी अन्तर-बुद्धि से स्वावलंबी ही होता है, लेकिन योग्य वातावरण के अभाव में वह परावलम्बी बन जाता है। हमारे पास आनेवाले बच्चे थोड़े ही दिनों में अपनी जरूरतें अपने-आप पूरी करने की कोशिश करते हैं, जैसे—सफाई के लिए पानी लेना, तौलिये से शरीर पोंछना, खेलने का सामान लेना और काम खतम करके उन्हें जगह पर रख देना, अपनी कटोरी लेना, दूध पीना, कटोरी धोना, फल छीलना व खाना, घर जाना और आना, अपना खुद का सामान सँभालना और घर ले जाना—यह सब बच्चों की स्वावलम्बन की तालीम है।

सामाजिक तालीम—

(क) ठीक बैठना, सीधे खड़े होना, रास्ते में ठीक तरह से चलना, समाज में व्यवस्थित और शान्त बैठना या खड़े रहना, एक साथ नाश्ता या भोजन करने के पहले मन्त्र कहना, बड़ों को और अतिथियों को प्रणाम करना, गाली-गलौज न करना, अपने से छोटे बच्चों की मदद करना, हर रोज प्रार्थना करना,

दो मिनट शांत रहना—स्कूल की प्रार्थना, तालीमी संघ के साप्ताहिक झंडा-वंदन, उत्सव-त्योहार, भोजन के वक्त और गाँव के दूसरे कार्यक्रमों में प्रत्यक्ष रूप से शामिल होकर ये आदतें बच्चों में डाली गयीं।

(ख) बाल-समाज और उनके नायक—बच्चों का एक बार परिचय हुआ और उनकी जरूरतभर साधन उन्हें मिल गये कि फिर उन्हें बड़ों की जरूरत नहीं रहती। इस तरह उनमें से ही चुने हुए टोली-नायक उनका पूरी तरह नेतृत्व करते हैं। इसमें आज तक देविका, गिरिधर, वसंत—ये बच्चे आगे आये हैं।

(ग) रचनात्मक प्रवृत्तियाँ और उनके साधन—बच्चों के सर्वाङ्गीण विकास के लिए कौन-सी प्रवृत्तियाँ अनुकूल हैं और उनके लिए देहात में मिलनेवाली चीजों से हम कैसे साधनों का संग्रह करते हैं, इस दिशा में अभी तक कुछ भी काम नहीं हुआ। हमें तो प्रयोग करके ही सीखना है।

सबसे पहले छोटे कंकड़-पत्थर, मिट्टी और खपरैल के टुकड़े, यही चीजें बच्चों को दीं। इन्हीं साधनों से बच्चे खेलने की ख्वाहिश (इच्छा) पूरी करते थे। धीरे-धीरे गाँव में ही मिलने-वाले, लेकिन बिना खर्चवाले साधन बच्चों को दिये। कुछ चीजें तो गाँव में ही तैयार करा ली गयीं। इसके बाद जरूरत के मुताबिक साधन भी बढ़े। इन साधनों के जरिये बच्चों के शरीर, मन और बुद्धि के विकास की ओर ध्यान दिया गया।

(घ) बच्चों के खेल—गाँव के दूसरे खेलों में से बच्चों के खेलों को चुनकर उन्हें बच्चों को सिखाया। इसके जरिये उनमें निर्भय वृत्ति, शारीरिक हलचल, चपलता और पाली से खेलने का अभ्यास कराया।

(च) भाषा—गाने व कहानियाँ—खासकर दैनिक कार्य-

क्रम में आनेवाले प्रसङ्गों, खेल के साधनों, गानों और कहानियों के द्वारा बच्चों का शब्द-भण्डार बढ़ाया। गानों और कहानियों का चुनाव ग्रामीण साहित्य से किया गया।

(छ) गणित—अभी तक प्रत्यक्ष अङ्क-ज्ञान नहीं दिया गया; लेकिन वस्तुओं के आकार के मुताबिक छोटा-बड़ा, ऊँचा-ठिंगना, लम्बा-चौड़ा, हलका-भारी—इनकी कल्पना प्रत्यक्ष निरीक्षण और उपयोग से उन्हें हुई।

(ज) सैर-सपाटा—धीरे-धीरे बच्चे गाँव में और गाँव के नजदीक के बगीचे में घूमने जाते रहे। प्रसङ्ग के अनुसार पशु, पक्षी, वृक्ष और फल-फूलों का निरीक्षण किया।

एक दिन का काम

समय—७ से ७॥ बजे तक, स्थान—बच्चों का घर।

प्रौढ़-शिक्षा और प्राथमिक सफाई—सोकर उठना, पाखाने जाना, मुँह धोना, नहाना और नाश्ता करना—ये क्रियाएँ बच्चे घर में पूरी करते हैं। उस वक्त गाँव में जाकर शिक्षक निरीक्षण करते हैं। साथ-साथ सफाई, बच्चों की हिफाजत, भोजन, कपड़े आदि विषयों पर प्रसङ्गानुसार चर्चा होती है।

७॥ से १०॥ बजे तक (शाला में)—

(क) शाला की व्यवस्था (सफाई)—शाला और मैदान की सफाई, कचरा उठाना, घूरे पर ले जाना, चटाई बिछाना, साधन की सफाई और रचना—ये क्रियाएँ शिक्षक और बच्चे, दोनों करते हैं। छोटे बच्चे निरीक्षण करते हैं।

(ख) प्रार्थना—पहले और दूसरे वर्ग की प्रार्थना एक साथ होती है। ठीक बैठना, दो मिनट तक शान्त रहना और प्रार्थना करना।

(ग) शरीर-सफाई—ज्यादातर बच्चे घर से ही साफ होकर

आते हैं। जो बच्चा गन्दा आता है, उसकी सफाई शाला में होती है। लड़कियों के बाल सँवारते हैं; खुजली, फोड़ा-फुंसीवाले बच्चे 'बाल-आरोग्य-केन्द्र' में भेजे जाते हैं। छोटे बच्चों की सफाई बड़े बच्चे और शिक्षक करते हैं।

(घ) रचनात्मक खेल—बच्चे अपनी रुचि के अनुसार साधन लेते हैं और खेलते हैं। इससे उनके मन और बुद्धि का विकास भी होता है।

(च) भाषा—रचनात्मक खेल के साथ बच्चों में आत्म-प्रकाशन (अपने को व्यक्त करने) की शक्ति बढ़ती है। वे खेल के साथ भाषा भी सीखते हैं।

(छ) गाने और कहानियाँ—बच्चों को बाल-गीत और बाल-कहानियाँ बतायी जाती हैं।

(ज) सामाजिक तालीम—नाश्ता करने में कटोरी साफ करना, लाइन से आना, ठीक और शांत बैठना, मंत्र कहना, फिर दूध पीना या फल खाना, बाद में मुँह धोना और कटोरी साफ करके रखना—ये बातें आ जाती हैं। शाला में अपना सामान ठीक रखना, घर जाते वक्त चटाई लपेटकर रखना, लाइन में खड़े होना, एक साथ नमस्ते करना और घर जाना—इन क्रियाओं के जरिये उनमें अनुशासन और व्यवस्थित रहने की आदत डाली जाती है।

१॥ से २॥ तक (घर पर)—

स्नान, भोजन, आराम और खेल में बच्चे अपना वक्त गुजारते हैं।

दोपहर के बाद २॥ से ५ तक (शाला में)—

(क) वर्ग-व्यवस्था—झाड़ू लगाना, चटाई बिछाना, सामान ठीक से रखना।

(ख) रचनात्मक खेल—सबेरे के समान।

(ग) भाषा—गाने और कहानियाँ, सबेरे के समान।

(घ) खेल—कुछ मनोरंजक, मैदानी खेल।

शाम को ५ से ८ तक (घर पर)—

खेल-कूद और भोजन के बाद आम तौर पर सब बच्चे रात को ८ बजे तक सो जाते हैं और सबेरे ७ बजे उठते हैं।

हफ्ते में एक दिन सैर के लिए बच्चे जाते हैं। वैसे तो गंदे कपड़े उसी समय साफ किये जाते हैं; लेकिन हफ्ते में एक दिन तो खासकर कपड़ों की सफाई के लिए ही रहता है। जुलाई, '४५ से जुलाई, '४६ तक बच्चे हर सोमवार को झंडा-वंदन के लिए तालीमी संघ में जाते थे। ...

छुट्टियों में पूर्व-बुनियादी शाला के काम का विवरण

[यह नियम-सा हो गया है कि प्रायः सभी शिक्षा-संस्थाओं में गर्मियों के दिनों में छुट्टी रहती है। लेकिन नयी तालीम में छुट्टी का प्रश्न ही नहीं उठता। गाँव के बच्चे गाँव में ही रहते हैं। इस समय उन्हें गर्मी में घूमने-फिरने से बचाने और उनकी हिफाजत करने की ज्यादा जरूरत है। यही समय ऐसा होता है, जब बच्चों में बुखार, चेचक, आँखें आना, खुजली आदि बीमारियाँ जोर पकड़ती हैं। दूसरे, बच्चों के माँ-बाप या पालकों को भी इन दिनों फुरसत रहती है और बच्चों के बारे में शिक्षक को उनसे चर्चा करने के लिए यह अच्छा समय होता है। क्योंकि जुलाई में जब स्कूल खुलते हैं, तो वर्षा के शुरू हो जाने से पालक अपनी खेती आदि धंधों में लग जाते हैं और इस ओर अधिक ध्यान नहीं दे सकते।

इस दृष्टि से इस साल पूर्व-बुनियादी के बच्चों का स्कूल गर्मी में भी चालू रखा गया। इसका एक महीने का विवरण नीचे दिया जाता है।]

काम की योजना—पिछले सालों का अनुभव था कि गर्मी की छुट्टी देना बच्चों के विकास की दृष्टि से हानिकारक है। गर्मी में बच्चों को स्कूल से छुट्टी देकर खुला छोड़ देने से वे धूल में खेलेंगे और गर्मी में इधर-उधर फिरेंगे। इसके सिवा, इसी समय (मई-जून में) विषम ज्वर, आँख, माता, गोवर आदि बीमारियों का जोर रहता है। इसलिए बच्चों के विकास की दृष्टि से यही अच्छा रहेगा कि गर्मी के दिनों में स्कूल खुला रखा जाय। मौसम

तथा बच्चों की जरूरतों को सामने रखकर कार्यक्रम में कुछ हेर-फेर किया जाय।

बच्चों की भर्ती करने की दृष्टि से भी मई-जून का वक्त ही अधिक उपयुक्त है। ऐसा करने से जुलाई से एकदम व्यवस्थित काम शुरू किया जा सकता है, नहीं तो मई-जून में छुट्टी और जुलाई-अगस्त तैयारी में—इस तरह चार महीने बेकार चले जाते और पहले छह माह में जितना काम होना चाहिए, उतना नहीं हो पाता।

बच्चों को यह छुट्टी फसल आने के मौके पर दी जाय। उस वक्त बच्चे खेतों में फिरेंगे, तो भी कुछ फायदा ही होगा। कार्यकर्ता अपनी जरूरत के मुताबिक छुट्टी लें।

कार्यक्रम—बच्चों को इकट्ठा करना और पालकों से सम्बन्ध स्थापित करना—ये दो कार्यक्रम के मुख्य अंग रहे।

स्कूल के कार्यक्रम में तबदीली—स्कूलके रोज के कार्यक्रम में हेर-फेर करके गर्मी में उसे इस तरह रखा—

सबेरे ७॥ से ६॥—स्कूल-सफाई, प्रार्थना, शरीर-सफाई, आरोग्य, नाश्ता, कहानियाँ, गाना, वर्ग-व्यवस्था और छुट्टी।

६॥ से ११—बच्चों का घर जाकर स्नान व भोजन करना।

दोपहर ११॥ से ४—

११॥ से १२ तक बच्चों का घर से शाला में आना,
१२ से २ तक सोना
२॥ से ३ कहानियाँ, गाने
३ से ३॥ नाश्ता (छाछ)
३॥ से ४ सूत्र-यज्ञ और छुट्टी।

इस तरह १८ अप्रैल से ३१ मई तक यह कार्यक्रम रहा। फिर आकाश में बादल घिरने लगे और डेढ़ महीने में डाली हुई बच्चों की आदत घर पर कायम रहेगी, इस उद्देश्य से दोपहर में

बच्चों को घर पर सोने के लिए छोड़ दिया। नयी तालीम का असल ध्येय तो है, बच्चों में स्वस्थ और शुद्ध जीवन की ऐसी आदतें डालना, जो घर में भी कायम रहें। इस तरह फिर सबेरे ७॥ से १० तक के कार्यक्रम के बाद छुट्टी हो जाती थी।

बच्चों का संगठन—ढाई से दस वर्ष के सब बच्चों की सूची तैयार की। पालकों से मुलाकात की। नयी तालीम में शारीरिक विकास का क्या स्थान है, यह उन्हें समझाया। पहले प्रतिष्ठित व जवाबदेह लोगों से चर्चा की, उसके बाद बच्चों के सब पालकों को अपना कार्यक्रम समझाया।

शाला में नियमपूर्वक आनेवाले और न आनेवाले बच्चों के स्वास्थ्य का अन्तर पालकों को दिखाया। नीरोगी बनना हमारा काम है। इसके लिए बच्चों को शाला में दूध दिया जाता है, उनके आराम और खेल की व्यवस्था की जाती है—यह बात पालकों को समझायी और उन्होंने मान ली। बच्चों के गैरहाजिर रहने के प्रति भी उनका ध्यान खींचा।

शरीर-सफाई—जो बच्चे पहले से ही शाला में आते थे, वे अब घर से ही साफ-सुथरे होकर आने लगे। इसलिए उन्हें साफ करने की जरूरत नहीं पड़ी। इसके बारे में उनकी माताओं को समझाया। नये बच्चों की सफाई स्कूल में ही की।

सोना—गर्मी में बच्चों को आराम की अधिक जरूरत रहती है। इसलिए इन दिनों बच्चों को दोपहर में सोने की आदत डालने का खास कार्यक्रम रहा।

दोपहर होने के पूर्व स्कूल बन्द होने से पहले ही, बिछौनों की व्यवस्था कर ली जाती थी। बच्चे ११॥ बजे से आने लगते थे। बाल-वर्ग और पहला-दूसरा वर्ग मिलाकर कुल चालीस बच्चे सोने को आते थे। बहुत-से बच्चे १२॥ बजे तक आ जाते थे। लेकिन घर पर भोजन में देर होने की वजह से कुछ बच्चों को

आते-आते १॥ बज जाता था। इसमें फायदे के बदले नुकसान होगा, यह सोचकर बच्चों के घर पर सबेरे न जाकर दोपहर में ही जाना शुरू किया। पालकों से मुलाकात की और उन्हें अपना नया कार्यक्रम समझाया। उन्हें बताया कि बच्चों को सोने के लिए स्कूल में भेजना हो, तो १२ बजे के पहले ही भेज दें, जिससे बच्चों के पैर नहीं जलेंगे और उन्हें धूप में तकलीफ भी नहीं होगी। पालकों ने यह बात मान ली और बच्चे समय पर शाला में आने लगे।

शुरू-शुरू के कुछ दिन, खासकर एक सप्ताह तक बच्चों को स्कूल में आकर सोने में मजा आता था। बच्चों से कहते थे कि "सो जाओ", लेकिन वे एक-दूसरे के साथ इशारे में वक्त बिताते थे और कहते थे "गुरुजी, नींद नहीं आती।" उनसे कहा कि "चुपचाप लेटे रहो, बोलो नहीं, जिससे दूसरे सोनेवालों को बाधा न पहुँचे।" इस प्रकार थोड़े अनुभव से शिक्षक पहले खुद शान्तिपूर्वक लेटकर सो जाते थे। फिर बच्चों को भी नींद आने लगी और वे अपने-आप सो जाते थे।

पानी—पीने के लिए ठंढे पानी की व्यवस्था सबेरे शाला बन्द होने के पहले ही कर ली जाती थी। बच्चों को काफी पानी पिलाया जाता था।

भोजन—बच्चों को सबेरे नाश्ते में दूध और दोपहर को छाछ दी जाती थी। बीमार बच्चों को घर पर ही दूध दिया गया। इसका बच्चों के स्वास्थ्य पर अच्छा असर पड़ा।

पालकों से सम्बन्ध—दोपहर के समय कुछ पालक बच्चों को पहुँचाने के लिए आते थे। वे सब बच्चों को शांतिपूर्वक लेटे हुए देखते और इस नवीन उपक्रम से खुश होते थे। इस समय पालकों को पीने के पानी और नाश्ते की जानकारी दी। शाला का ठंढा, स्वच्छ पानी पीकर पालक घर लौट जाते थे।

कुछ पालकों को जान-बूझकर बुलाया गया और दोपहर में सोये हुए बच्चे उन्हें दिखाये गये। ठंढा पानी व कभी-कभी छाछ देकर भेज दिया। इसका बहुत फायदा हुआ और पालक इस काम को आदर की दृष्टि से देखने लगे।

बच्चों का आरोग्य—हमेशा के कार्यक्रम की तरह बच्चों के आरोग्य के ऊपर ध्यान तो दिया ही, लेकिन इसके पहले जो बच्चे शाला में नहीं आते थे और जिसके प्रति पालक भी ध्यान नहीं देते थे, ऐसे आठ-दस बच्चों को स्कूल में लाना शुरू किया। इन्हें खूब खुजली थी। बाल-आरोग्य-केन्द्र में उनके फोड़े धोकर मरहम लगाया और दूध पिलाया। पहले तो उनके पालक 'ननु-नच' करते थे। लेकिन उन्हें समझाया कि बच्चों के फोड़े अच्छे नहीं होने तक हम दूसरा कुछ करनेवाले नहीं हैं। बच्चे अगर स्कूल में नहीं आये, तो भी उन्हें घर से दवाखाने में लाते और घर ले जाकर दूध पिलाते। एक हफ्ते में सब बच्चे दुरुस्त हो गये। पालकों को भी खुशी हुई और बच्चे भी स्वस्थ हो गये।

१ मई और १ जून को बच्चों का वजन लिया गया। ज्यादातर बच्चों का वजन बढ़ा। छह बच्चे दोपहर में सोने को नहीं आते थे, उनका वजन घटा।

पालकों पर असर—हम पहले ही बता चुके हैं कि बुनियादी तालीम का ध्येय है, बच्चों का विकास और बालकों को बच्चों के सर्वांगीण विकास के बारे में समझाना। हमारे इस कार्यक्रम में चार बातें मुख्य रहीं—बच्चों के आराम, पानी, भोजन की व्यवस्था और उनके आरोग्य की देखभाल। इससे बच्चों के स्वास्थ्य पर अच्छा असर पड़ा। गर्मी में उनका वक्त आनन्द और आराम से बीता। इन सब परिणामों को देखकर पालकों पर भी उसका अच्छा प्रभाव पड़ा और हमारे काम के प्रति उनका विश्वास बढ़ा।"

तीन साल के प्रयोग के बाद

एक साल का काम : बच्चों की तालीम

१९४७-१९४८ तक

सेवाग्राम में बच्चों की तालीम के शुरू होने को दो वर्ष हो चुके हैं। तीसरे वर्ष का यानी जुलाई १९४७ से अप्रैल १९४८ तक का वार्षिक विवरण यहाँ दिया जा रहा है। पिछले दो वर्षों के अनुभव से बाल-शिक्षा के काम में कुछ हेर-फेर भी किये गये। गर्मी की छुट्टी में भी स्कूल चालू रखा गया। स्कूल में उन्हीं बच्चों को दाखिल किया गया, जिनके संरक्षकों ने अपने बच्चों को रोज समय पर स्कूल में पहुँचाने की जिम्मेदारी स्वीकार की।

पालकों से संपर्क

बच्चों के घर—बच्चों की तालीम का काम जिस दिन से यहाँ शुरू हुआ, उसके पहले दिन से ही खेल शुरू होने के पहले हर रोज एक घंटा मैंने बच्चों के घर में देने का रिवाज रखा था, वह वैसा ही चालू रहा। सफाई, आरोग्य, खाना, कपड़ा आदि जीवन की जरूरी बातों पर सोचने की दृष्टि से मुझे व पाठकों को, दैनिक जीवन में एक-दूसरे से सीखने और सिखाने के काफी प्रसंग आये हैं। इस समय का ठीक उपयोग करने से भी नये संस्कार डालने का काम आसान होता है, ऐसा अनुभव हुआ। इसीलिए मैंने ग्राम-सफाई को भी प्रौढ़-शिक्षा का विषय मानकर स्कूल की दिनचर्या में शामिल किया और हर रोज सबेरे ६ से ७ बजे तक यह कार्यक्रम चलाता रहा। साथ-साथ भंगी के काम की श्रेष्ठता, सफाई का महत्त्व, मैला और कचरे से

मिश्रित खाद बनाना और उसका उपयोग—इसकी जानकारी दैनिक दर्शन से बालकों को दी और चर्चा तथा साथ-साथ काम करके पालकों को भी समझाया।

बच्चों की हाजिरी, नाश्ता-खर्च, बच्चों की सफाई और स्वास्थ्य, बीमारी और इलाज आदि विषयों के बारे में पालकों से मिलकर चर्चा की गयी। स्कूल के गणेशोत्सव के सहभोज में पालकों ने हिस्सा लिया और बाल-जीवन के प्रदर्शन में उपस्थित रहे। मकर-संक्रान्ति के उत्सव में बच्चों की माताओं ने भाग लिया। समय-समय पर होनेवाले स्कूल के कार्यक्रमों में पालक उपस्थित रहकर अच्छी दिलचस्पी ले रहे हैं।

सुबह के गाँव-भ्रमण का एक खास उद्देश्य यह रहा कि किसी कारण से शाला में न आ सकनेवाले जो बच्चे घर पर ही रहते हैं और जो बच्चे शाला में कुछ घण्टे रहते थे, वे सब एक साथ समय बितायें। वातावरण का भी बच्चों के विकास पर, अच्छा या बुरा, कुछ असर तो होता ही है। इसलिए जो बच्चे घर पर रहते हैं, वे स्कूल के वातावरण से भले ही वञ्चित रहें, लेकिन हर रोज एक घंटा उनकी ओर ध्यान देने का मौका मिला और इससे स्कूल में आनेवाले बच्चों के साथ ही घर पर रहनेवाले बच्चों पर भी हमारे संस्कारों का अच्छा असर हुआ।

इस अनुभव से "पूरा गाँव मेरा स्कूल बना और गाँव के सारे बच्चे मेरे स्कूल के बच्चे। हरएक बच्चे का घर उसके स्कूल का कमरा है और सारा स्कूल एक आदर्श घर का एक बड़ा कमरा, जहाँ आकर बच्चे अपना विशेष विकास करते हैं।"

फिरता स्कूल—शाला में न आनेवाले बच्चों के लिए एक फिरता स्कूल भी हमने शुरू किया। इस साल ता० १५ फरवरी से २ मार्च, '४८ तक पू० कस्तूरबा गांधी श्राद्ध-सप्ताह था। हमारे

पास सीखने के लिए आनेवाली बहनों की मदद से यह काम शुरू किया गया।

कार्यक्रम—प्रथम जो थोड़े बच्चे मिलते थे, उनको लेकर गाना गाते-गाते बच्चों के घर गये। जो बच्चे मिले, उन सबको घर के बाहर निकाला, माताओं को समझाया। जो अपने छोटे बहन-भाई की देखभाल करते थे, वे अपने उन छोटे भाई-बहनों को लेकर आये।

तीनों बहनों ने तीन मुहल्लों में ऐसी टोलियाँ बनायीं—

१. सफाई—

प्रथम तो सब बच्चों की शरीर-सफाई हुई। जिनके कपड़े गन्दे थे, उन्हें साफ किया गया। बाल सँवारे। नाखून काटे।

फोड़े-फुन्सीवाले बच्चों को बड़े और समझदार बच्चों या पालक के साथ आरोग्य-केन्द्र में इलाज के लिए भेजा गया।

२. प्रार्थना—इसके बाद छोटी-सी प्रार्थना होती थी। भजन और धुन सिखायी।

३. गाना कहानियाँ और खेल—मनोरंजन के लिए कुछ गाने, कहानियाँ बतलायीं और खेल खेले।

ऊपर का सब कार्यक्रम ऐसी जगह चलता था, जहाँ बच्चों की माताएँ अपना दैनिक काम करती थीं। उन्होंने इस काम को देखा; कुछ माताओं को इन बहनों के काम में मदद देने की इच्छा हुई और मदद भी दी।

साथ-साथ बच्चों की सफाई के बारे में माताओं को भी कुछ सीखने को मिला।

परिणाम यह हुआ कि हमारे दैनिक काम के प्रति लोगों की श्रद्धा बढ़ी और उन बच्चों में भी १५ दिन आनन्द का वातावरण भरा हुआ दिखाई देता था। उस सप्ताह के बाद कई बच्चों ने

हमारी शाला में आना शुरू किया। यह कार्यक्रम सवेरे ७ से ९ तक चलता था।

दर्ज संख्या—जुलाई में इस तरह ४५ बच्चे स्कूल में दाखिल हुए, जिनमें ४० बच्चे गाँव के और ५ अन्य गाँवों के थे। ४० में ४ से ९ वर्ष के २७ और २॥ से ४ वर्ष के १३ बच्चे थे। अगस्त में ९ और सितम्बर में ४ बच्चे और दाखिल हुए। इस तरह सितम्बर के अन्त में कुल बच्चे ५४ रहे। इसके बाद बीच-बीच में पालकों के स्थानांतर, घरेलू कठिनाइयाँ, अनियमित उपस्थित आदि कारणों से ९ बच्चे कम हुए और ४ बच्चे नये आये। इसलिए अप्रैल के अन्त में बच्चों की संख्या ५० रही।

उपस्थिति—जुलाई, '४७ से अप्रैल, '४८ तक बच्चों की औसत हाजिरी नीचे लिखे अनुसार रही—

	जुलाई	अगस्त	सितम्बर	अक्तूबर	नवम्बर	दिसम्बर	जनवरी	फरवरी	मार्च	अप्रैल
दर्ज संख्या	४५	५१	५५	५४	५१	४७	५०	४८	५०	५०
औसत हाजिरी	३२	४६	४४	४१	३१	२९	३३	३५	३०	२२

इस वर्ष बच्चों की हाजिरी तीन बार रखी गयी–सुबह की, दोपहर की और नाश्ते को। सुबह की और नाश्ते की हाजिरी में विशेष फर्क नहीं रहता। बीमार बच्चों को उनके घर पर नाश्ता पहुँचाया गया हो, तो उनको नाश्ते में हाजिर लिखा जाता है। दोपहर को छोटे बच्चे सो जाते हैं और बड़े बच्चे अपने छोटे भाई-बहनों को सँभालने के लिए घर रहते हैं। इस कारण दोपहर की हाजिरी सुबह की हाजिरी से करीब आधी रही। खासकर अगस्त,

सितम्बर और अक्तूबर में निंदाई और नवम्बर से फरवरी तक खेती का काम होने से उन महीनों में बच्चों की हाजिरी कम रही। इस सम्बन्ध में पालकों को समझाया गया, लेकिन उससे हाजिरी में सुधार नहीं हुआ। छोटे बच्चों को सँभालने के लिए बड़े बच्चों को घर पर रख लेने के सिवा पालकों के लिए कोई चारा नहीं रहता, क्योंकि इसके बिना वे अपने काम पर जा नहीं सकते। शुरू में बगैर कारण कोई गैरहाजिर रहा, तो उससे प्रतिदिन एक आना नाश्ता खर्च लेने का नियम रखा गया। उससे १॥≈) वसूल हुआ।

बच्चों का स्वास्थ्य—सात वर्ष से कम उम्र के बच्चों की मामूली बीमारियाँ सालभर चलती रहीं। इस वर्ष आँखें आने की संक्रामक बीमारी सभी बच्चों को हुई। बच्चों की अन्य बीमारियाँ इस तरह रहीं—

	मलेरिया	पेचिश	आँख आना	खुजली	जखम	कुत्तेका काटना	कान बहना	कृमि	जुकाम	दाँत	हड्डी में दर्द
जुलाई	८	४	१	८	२	१	–	–	–	–	–
अगस्त	७	१	२३	५	२	–	१	–	–	–	–
सितम्बर	७	–	१४	३	–	–	–	१	–	–	–
अक्तूबर	३	–	१	–	२	–	–	–	१०	१	–
नवंबर	७	–	–	३	–	–	१	–	२	–	–
दिसंबर	४	–	२	५	१	–	१	–	–	–	–
जनवरी	५	–	–	५	२	–	–	–	–	–	१
फरवरी	३	–	३	–	–	–	–	–	–	–	–
मार्च	४	–	२	२	–	–	–	–	–	–	–
अप्रैल	६	–	–	–	–	–	–	–	–	–	–

इन बीमारियों का इलाज 'बाल-आरोग्य-केन्द्र' में किया गया। अगस्त में सब बच्चों को हैजे की सूई दी गयी तथा फरवरी में माता का टीका लगाया गया। आँख की बीमारी

में सब बच्चों की आँखों में हर तीसरे दिन दवा डाली गयी, जिससे अच्छा लाभ हुआ।

बच्चों का वजन—हर माह ५ तारीख के अन्दर बच्चों का वजन लिया गया। साल में ३ से ४ पौंड तक २ बच्चों का, ३ पौंड तक ५ बच्चों का, १ से २ पौंड तक ३ बच्चों का, ½ से १ पौंड तक २ बच्चों का वजन बढ़ा। वजन की औसत वृद्धि २ पौंड रही। ४ बच्चों का वजन नहीं बढ़ा। बच्चों का वजन कम होने पर पालकों को सूचना दी गयी।

बच्चों की डॉक्टरी जाँच इस वर्ष नहीं हुई।

नाश्ता—बच्चों को प्रतिदिन, प्रति बालक करीब १० तोला दूध देने की योजना थी। लेकिन ७। तोले दूध दिया गया। दूध का भाव प्रति रुपया ३ सेर लगाया है। साल में दूध का कुल खर्च २४५-)॥। हुआ। इसमें पहले और दूसरे दर्जे के बच्चों का खर्च भी शामिल है।

	जुलाई	अगस्त	सितम्बर	अक्टूबर	नवम्बर	दिसम्बर	जनवरी	फरवरी	मार्च	अप्रैल
औसत हाजिरी	४१	४८	३७	४२	३२	३१	३३	३५	३०	२२
कुल नाश्ते की कीमत	रु. ३५=)॥	रु. ३३।-)।	रु. ३२	रु. ३२	रु. २१	रु. २०	रु. २४।।।)	रु. १६।।)	रु. २१।=)	रु. १८
दूध प्रति बालक	तोले ७।।।	तो. ६।।	तो. ६	तो. ७	तो. १०	तो. ८	तो. ८	तो. ७	तो. ८	तो. ७
खर्च प्रति बालक	पाई ६	पाई ५।।	पा. ५।।	पा. ५।।	पा. ७।।	पा. ६।।	पा. ६।।	पा. ६	पा. ६।।	पा. ६

दूध के अलावा बच्चों को बीच-बीच में संतरा, केला, छाछ व नीरा भी नाश्ते में दिये गये। हर बुधवार को सैर और सहभोज के लिए अतिरिक्त खर्च किया गया, जो कुल १२॥=)॥ का हुआ।

कुल नाश्ता खर्च २६६॥≡)। हुआ। प्रतिदिन प्रति विद्यार्थी औसत खर्च पाई आता है।

पीने का पानी—बच्चों को पीने के लिए पानी रोज ताजा और छानकर घड़े में रखा जाता रहा। घड़े से पानी लेने के लिए डंडीवाला बर्तन रखा गया, जिससे घड़े में गिलास और हाथ डालकर पानी न लेना पड़े और पानी साफ रहे। बच्चों को पीने का पानी साफ रखने का ज्ञान हुआ तथा उनमें सफाई की आदत पड़ी। वर्षा के दिनों में पानी में लाल दवा (पोटैशियम परमॅंगनेट) डाली गयी।

शाला-सफाई—शाला में आते ही बच्चे शाला की सफाई में मदद देते हैं। स्कूल और आहाता झाड़ू लगाकर साफ करना, कागज-कचरा आदि उठा लेना, टोकरी में कचरा भरकर गढ़े में डालना—इन कार्यों को बच्चे स्वाभाविक तौर पर करने लगे हैं। चटाइयाँ बिछाना और स्कूल खतम होने पर उन्हें लपेटकर रखना तथा साधनों को व्यवस्थित रूप से रखना तथा व्यवस्थित रूप से काम करना—ये बातें बच्चों ने खुद कीं। हर शनिवार को स्कूल लीपने के काम में गोबर, मिट्टी, पानी आदि लाने में बच्चों ने मदद दी।

शरीर-सफाई—पिछले वर्ष की अपेक्षा इस वर्ष बच्चों के शरीर की सफाई में काफी सुधार हुआ। सबमें साफ कौन है, इसकी रोज प्रतियोगिता रखी गयी। स्कूल में आने के पहले स्नान करायें तो बच्चे रोते हैं, बहुतेरे पालकों की ऐसी शिकायत रहती थी।

इस होड़ के कारण वह शिकायत कम हुई। हर रोज प्रार्थना के बाद सब बच्चे कतार में खड़े होते हैं। वे अपना सफाई-मन्त्री चुनते हैं। साफ-सुथरा बालक सफाई-मन्त्री चुना जाता है। सफाई-मंत्री सब बच्चों की सफाई देखता है। बच्चों के बाल, दाँत, नाक, आँख और नाखून साफ न हों, तो उन्हें घर पर या स्कूल में साफ करने की सूचना दी जाती है। सफाई-मंत्री इसके लिए बच्चों को पानी, तेल, राख, तौलिये देता है। छोटे बच्चों की मदद करता है। सफाई को स्कूल के दैनिक कार्यक्रम में महत्त्व का स्थान दिया गया है, जिससे बच्चों में सफाई की आदतें पड़ रही हैं और चमड़े की बीमारी में कमी हुई है।

कपड़ा-सफाई—पहले बच्चों को घर से कपड़े साफ धोकर लाने की सूचना दी जाती थी और हफ्ते में एक बार स्कूल में कपड़े साफ कर लिये जाते थे। इस वर्ष इसके अलावा जो बच्चे स्कूल में मैले कपड़े पहनकर आते, उनके कपड़े स्कूल में धोने का नियम रखा गया और उनको तब तक स्कूल के कपड़े पहनने को दिये गये। स्कूल में जो कपड़े धोये गये, उनके लिए साबुन का उपयोग किया गया।

सूत-कताई—५ से ७ वर्ष के बच्चे कपास साफ करते हैं। सलाइ-पटरी से ओटते हैं और तकली पर सूत कातते हैं। खेत में जाकर एक बार बच्चों ने कपास की चुनाई भी की। इसमें उन्होंने कपास, चटाई, सलाई-पटरी, तकली, गत्ता, लपेटा, तराजू, बाँट—इन साधनों का उपयोग किया।

बागवानी—स्कूल के पीछे क्यारियाँ बनाकर बच्चों ने पौधे और शाकभाजी लगायी। जमीन खोदना, खाद देना, बीज रोपना और कंद लगाना, पानी देना, घास निकालना, पौधों की देखभाल करना—ये सारे काम बच्चों ने किये। झारी से पानी देने में उनमें होड़ लगती थी। फूल देखकर उन्हें बड़ा आनन्द होता

था। बागवानी में बच्चों ने कुदाली, खुरपी, टोकरी, रस्सी, झारी—इन साधनों का उपयोग किया।

चित्रकला—इस वर्ष चित्रकला में अच्छी प्रगति दिखाई दी। खड़िया मिट्टी से काले तख्ते पर एक साथ मिलकर चित्र बनाना, खड़िया मिट्टी से खपड़े पर व्यक्तिगत चित्र खींचना और कूँची से रंग द्वारा कागज पर चित्र निकालना, इन तीन तरीकों से बच्चों ने काम किया। खड़िया और रंगों का ठीक उपयोग करना बच्चों ने सीखा। इनमें काला तख्ता, खड़िया, खपरैल, रंग, कागज, खजूर की कूँची और कपड़ा—इन साधनों का उपयोग बच्चों ने किया।

मिट्टी का काम—मिट्टी से खेलने में बच्चों को स्वाभाविक रुचि होती है। इसलिए मिट्टी का काम उन्हें बहुत पसन्द रहा। बच्चों ने खुरपी से मिट्टी ढीली की, कंकड़ और कचरा निकालकर उसे साफ किया। कागज के टुकड़ों को सड़ाकर कूटा और मिट्टी में मिलाकर मिट्टी तैयार की। बच्चों ने अपनी रुचि के अनुसार मिट्टी की चीजें बनायीं। खासकर गाय, बछवा, बैलगाड़ी, कौआ, चिड़िया, साँप, बिच्छू, रसोई के घरेलू बर्तन और तरह-तरह के घरेलू खाद्य पदार्थ मिट्टी से तैयार किये। मिट्टी का काम करते वक्त हथेली से ऊपर हाथ में तथा कपड़े में मिट्टी न लगे, इसका बच्चों ने खयाल रखा। मिट्टी की चीजें सूखने पर उनसे खेलने में बच्चों को बड़ा आनन्द आया। इस काम में मिट्टी भिगोना, कंकड़ निकालना, कागज सड़ाना, कूटना तथा मिट्टी में मिलाना, गीले कपड़े से ढँककर मिट्टी गीली रखना आदि क्रियाओं का बच्चों को अभ्यास हुआ। उसके लिए टोकरी, कागज, घमेला, पटिया, राख, पानी का बर्तन आदि साधनों का उन्होंने उपयोग किया।

शिक्षा के साधन—२॥ से ४ साल की उम्र के बच्चों ने खेल

और शिक्षा के साधन के तौर पर नीचे लिखी चीजें इस्तेमाल कीं—खपरैल के टुकड़े, शंख, सींप, लकड़ी के गुटके, रीठा, गुंजा, महुआ बीज, वाघनख, लकड़ी की रंगीन तराजू आदि। रंग-परिचय के लिए रंगीन थैलियाँ, मिट्टी के बर्तन, बैलगाड़ी, सरकंड, खजूर के पत्ते, वृत्ताकार, तिकोनी और चौकोनी आकार के लकड़ी के टुकड़े आदि का उपयोग किया।

बच्चों ने 'बालपोळा'* त्योहार मनाया। उन्होंने उसमें पालकों से १।-) चंदा प्राप्त किया। इस रकम से खिलौने खरीदे गये।

बच्चों को ये सब चीजें बहुत प्रिय हैं। वे उन्हें सँभालकर रखते हैं। एक बच्चा दूसरे गाँव गया था, उस वक्त नदी में से शंख और सींप लेकर आया और उन्हें स्कूल में दे दिया।

स्वावलम्बन—अधिकांश बच्चे अपना काम स्वयं कर लेते हैं। जो नहीं कर सकते, उन्हें बड़े बच्चे मदद देते हैं। सैर के समय उनकी ओर देखने की जरूरत नहीं रहती; वे जिम्मेदारी से काम करते हैं।

सामाजिक आदतें—बच्चों का शाला का जीवन समाज-जीवन ही है। स्कूल द्वारा उनमें नीचे लिखी सामाजिक आदतें डाली गयीं—

ठीक तरह से बैठना, समारोह तथा नाश्ता-भोजन और

---

* मराठीभाषी क्षेत्र में भादों की अमावस्या के दिन 'पोळा' नामक उत्सव मनाया जाता है। यह बैलों का उत्सव-दिन है। इस दिन खेतिहर लोग बैलों से कोई काम नहीं लेते, उन्हें प्रेम से खूब खिलाते हैं, उनका शृंगार करते हैं और शाम के समय गाँव के सारे बैल किसी एक स्थान पर एक कतार में खड़े किये जाते हैं। गाँव का मुखिया उन सबकी पूजा करता है। यह एक ऐसा उत्सव है, जो गो-वंश की प्रतिष्ठा का परिचायक है। दूसरे दिन छोटे-छोटे बच्चे काठ के बैलों के साथ पोळा मनाते हैं।

प्रार्थना में शान्ति से रहना, बड़ों को, गुरु को और मेहमानों को नमस्कार करना, किसीको गाली न देना, छोटों की मदद करना, नाश्ता तथा भोजन के प्रारम्भ में मन्त्र कहना, वर्ग-नायक की आज्ञा पालन करना आदि।

भाषा—बच्चे अपना, पिता का और गाँव का नाम बता सकते हैं। प्रत्येक क्रियावाचक नये शब्द जैसे कपास साफ करना, ओटना, कातना आदि का वाक्य में उपयोग कर सकते हैं। ऋतु के अनुसार प्राकृतिक परिवर्तन और उसको दर्शानेवाले शब्द बच्चों को ज्ञात हुए।

पहली और दूसरी कक्षा के बच्चों के साथ इन छोटे बच्चों को भी बालगीत सिखाये गये। 'काय वाणू आतां, लहानपण देगा देवा, अवताराचें काम, घरोघरीं बाप, मारो छे मोर, आला बघ नन्दीबैल, मामाची संगीत गाडी, आमुची शाळा—ये गीत मुख्य हैं।

कथाओं में मेंढक और बैल, मेंढकों का राजा, बूढ़ी माँ, तोता भाई, कछुआ और खरगोश, कौआ-चिड़िया, खुश कौआ आदि कहानियाँ बतायीं।

गणित—खेल के साथ चीजें गिनना, बच्चों की संख्या गिनना, मतदान के समय काम, ज्यादा मतों को समझना, वजन और तराजू का उपयोग करना, हलके और भारी को पहचानना, त्रिकोण और वृत्त का ज्ञान, बच्चों की संख्या देखकर फल तथा दूध आदि परोसना—इतनी बातें बच्चे कर रहे हैं। खेल और कवायद के समय बच्चे अपनी गिनती स्वयं कर लेते हैं। ५ से ७ वर्ष तक की उम्र के बच्चे २० तक गिनती गिन सकते हैं।

प्रकृति-निरीक्षण—इसका तीन हिस्सों में वर्गीकरण होगा।

(१) ऋतु के अनुसार तेज धूप, कड़ा जाड़ा, घास के ऊपर

पड़ी हुई ओस, बिजली का चमकना आदि प्राकृतिक बातों का बच्चों ने निरीक्षण किया तथा उन पर चर्चा की।

(२) सैर और बागवानी के समय, अलग-अलग पौधों, लता और पेड़ों की पहचान हुई, उसके बारे में चर्चा हुई। खासकर बरबड़ी के बगीचे में फूल, फल और तरकारियों के जो अलग-अलग प्रकार देखे, उसका बच्चों ने अच्छी तरह से निरीक्षण किया।

बागवानी के समय बच्चों ने फूल के पौधों को गोबर का खाद दिया। खाद में अंकुर निकले हुए ज्वार, मक्का तथा मूँग के जो बीज दीखे, वे उन्होंने अपने मित्रों तथा शिक्षकों को दिखाये। बच्चों ने उन अंकुरों का निरीक्षण किया। अंकुर की जड़ नीचे, पिंड और पत्ते ऊपर निकलते हैं, इसका उन्हें ज्ञान हुआ। अंकुर निकले बीजों को उन्होंने खाद में से निकालकर जमीन में लगाया तथा सींचा।

बच्चों ने प्राणियों में मेंढक का संपूर्ण अवलोकन किया। वर्षा ऋतु में स्कूल के अहाते के एक गढ़े में मेंढक ने अंडे दिये। उनसे निकले हुए मछली के आकार के मेंढकों को बच्चों ने पकड़ा और उन्हें पानी में रखा। उनसे बने मेंढक के बच्चे तथा पूरे बढ़े हुए चितकबरे, सफेद, पीले आदि रंग के मेंढक उन्होंने देखे। बच्चों ने उनकी आवाज तथा कूदने की नकल की। स्कूल के पास एक पुरानी लकड़ी के पोले हिस्से में एक चुहिया और उसके सात बच्चे बालकों को दिखाई दिये। बालकों ने टोकरी में सूत की छीजन बिछाकर उन्हें रखा। टोकरी को स्कूल के एक कोने में, जहाँ अँधेरा था, रख दिया। चुहिया वहाँ हमेशा रहती है, इसका बालकों ने निरीक्षण किया।

खेल—स्थायी साधनों के खेलों को छोड़कर 'चुन-चुन पोली', 'अंधा-अंधा पानी किती', 'डाँगडी, तुझी गाय वेल खाते'—ये

ग्रामीण खेल तथा 'आगगाडी', 'दोन बाजून किती वाजले' आदि अन्य खेल बच्चों को सिखाये गये। (खेलों के नाम मराठी हैं।)

बच्चों के कौतूहल का विषय

हवाई जहाज का निरीक्षण—बच्चों के लिए यह एक विशेष कौतूहल का विषय रहा कि स्कूल के ऊपर से रोज विमान जाता है। उसकी आवाज सुनते ही बच्चे बाहर निकलकर आकाश में देखने लगते हैं। हवाई जहाज बहुत ऊँचा उड़ रहा हो तो छोटा, कम ऊँचा हो तो उससे कुछ बड़ा, नजदीक हो तो काफी बड़ा, धूप हो तो चमकता हुआ दिखाई देता है और बादल हो तो अदृश्य रहता है—यह देखकर बच्चों को मजा आता। पानी बरसते वक्त हवाई जहाज कैसे उड़ता होगा—इस संबंध में बच्चे आपस में चर्चा करते हैं तथा शिक्षक से पूछकर अपनी जिज्ञासा पूर्ण करते हैं।

सैर—इस साल पाँच वक्त सैर का कार्यक्रम रहा। सैर मुख्यतः जाड़े के मौसम में की गयी। सैर को जाने के पहले शिक्षक सैर का स्थान पसन्द करते। पीने के लिए अच्छा पानी, ठहरने के लिए छायादार पेड़ तथा खेलने के लिए खुली जगह है या नहीं—यह देख लेते। सैर का स्थान तीन मील के अन्दर चुना जाता है। सैर की सूचना बच्चों को पहले ही दी जाती है। बच्चे उस दिन सुबह उठकर प्रातर्विधि से निपटकर स्नान और नाश्ता करके अपने भोजन के साथ स्कूल में एकत्र होते। सैर-मन्त्री आगे होता और उसके पीछे कतार में बच्चे चलते। अपना-अपना भोजन तथा कटोरी बच्चे स्वयं सँभालते। बहुत ही छोटे बच्चों को बारी-बारी से शिक्षकों को अपने कन्धे पर उठाकर चलना पड़ता। दही का बर्तन, शाकभाजी, रस्सी और बाल्टी, पानी का डण्डीवाला बर्तन आदि वस्तु बच्चे बारी-बारी से उठाते। स्थान पर पहुँचने पर सैर-मन्त्री स्थान-मालिक की

इजाजत लेता और बाद में बच्चे अन्दर जाकर जगह को साफ करते, हाथ-पैर धोकर प्रार्थना करते और भोजन की तैयारी करते। बच्चे अपनी-अपनी भोजन की गठरी खोलते और कौन क्या भोजन लाया है, इसे सबको बताया जाता। बासी तथा सूखी ज्वार की रोटी, हरी मिर्च तथा नमक से लेकर घी और गेहूँ की रोटी तक भिन्न-भिन्न पदार्थ बच्चों के भोजन में होते। स्कूल की ओर से सब बच्चों को दही, हरी भाजी, प्याज तथा धनिया दी जाती। इस दिन दूध खर्च बन्द रहता है। जिन बच्चों को जरूरत होती, उन्हें रोटियाँ भी दी जातीं। भोजन के शुरू में मन्त्र कहा जाता और श्लोक गाते हुए भोजन चलता। भोजन के बाद बच्चे अपनी कटोरी तथा भोजन का कपड़ा साफ करते। कुछ देर आराम के बाद पेड़ों पर चढ़ने और मनोरंजन का कार्यक्रम होता। गाने और कहानियाँ कही जातीं। बाद में आसपास के खेत तथा बगीचों का निरीक्षण कर वापस आकर बच्चे अपने-अपने घर जाते।

इस वर्ष की सैर की तारीख, ग्राम, अन्तर तथा वहाँ जिन बातों का निरीक्षण किया, उनकी तफसील निम्न प्रकार है—

२०-११-'४७—बरूडा का बगीचा—तीन मील—बैंगन, मिर्च, पपीता, कुँआ, मोट।

३-१२-'४७—बरबड़ी का बगीचा—दो मील—सब तरह के फूल के पौधे, फलों के पेड़, शाक भाजी तथा रहँट।

२४-१२-'४७—नांदोरा—दो मील—आम के पेड़, बन्दर।

३१-१२-'४७—फरजी का खेत—एक मील—ज्वार, कपास तथा अरहर की फसल।

२१-१-'४८—गाँव की वाड़ी—आध मील—शाक भाजी और गन्ने की फसल।

सैर में बच्चे अपना-अपना खाना घर से लाते थे।

त्योहार और उत्सव—गाँव में तथा स्कूल में नीचे लिखे उत्सव व त्योहार मनाये गये—

१५ अगस्त, श्री भंसालीजी का स्वागत, गांधीजी का निधन-दिवस, कस्तूरबा श्राद्ध-दिन, बाल-आरोग्य-केन्द्र का वार्षिक उत्सव, बाल-जीवन प्रदर्शनी, सहभोज, बाल-स्नेह-सम्मेलन, दही-हुरडा और मकर-संक्रान्ति। इन सबमें बच्चों ने हिस्सा लिया।

बालपोळा—'पोळा' त्योहार में किसान अपने बैलों को सजाकर गाँव में घुमाते हैं। दूसरे दिन बच्चों का पोळा होता है। उस दिन अपने लकड़ी के बैलों को सजाकर बच्चे स्कूल में एकत्र हुए। उन्होंने स्कूल के आहाते में तोरण बाँधा। वहाँ बैलों को खड़ा किया गया। पूजा होने के बाद उनका जुलूस निकाला गया। बच्चे जुलूस के साथ अपने-अपने घर गये और उन्होंने अपनी माँ से बैलों की पूजा करायी तथा खिलौनों के लिए चंदा एकत्रित किया। इस अवसर पर मिट्टी के बैलों के एक प्रदर्शनी बच्चों ने स्कूल में की।

गणेशोत्सव—बच्चों ने मिट्टी से गणेशजी की मूर्ति बनायी और स्कूल में उसकी स्थापना की। छह दिन गणेशजी के सामने पूजा, भजन आदि का कार्यक्रम रहा। एक दिन सहभोज का कार्यक्रम रहा। उसके लिए बच्चों ने भोजन का सामान एकत्र किया। भोजन के लिए पालकों को निमंत्रित किया गया था। बच्चों और पालकों का यह सहभोज बहुत अच्छा रहा।

बाल-जीवन प्रदर्शनी—बच्चों के दैनिक जीवन से सम्बन्धित वस्तुओं का संग्रह, बिना खर्च से बन सकें—ऐसे घरेलू खिलौने, बच्चों के मनोविकास तथा शिक्षा के साधन आदि की एक प्रदर्शनी स्कूल में रखी गयी। इस प्रदर्शनी से पालकों को बाल-शिक्षा के साधनों की कल्पना मिली।

बाल-स्नेह-सम्मेलन—दशहरे के दिन यह सम्मेलन किया

गया, जिसमें बच्चों के साथ उनके संरक्षकों तथा मित्रों को भी निमंत्रित किया गया। सुबह गाँव में प्रभात-फेरी निकाली गयी। स्कूल में प्रार्थना तथा बच्चों के खेल हुए। बच्चों को मिठाई बाँटी गयी।

मकर-संक्रांति—इस त्योहार के दिन लड़कियों ने अपने पालकों को, विशेषतः अपनी माँ-बहनों को स्कूल में बुलाया तथा हलदी-कुंकुम और तिल-गुड़ का आदान-प्रदान किया।

दही-हुरडा—बच्चों की सूचना के अनुसार स्कूल में 'दही-हुरडा' का कार्यक्रम था। बच्चे अपने-अपने खेत से ज्वार के भुट्टे लाये। स्कूल में उनको भूना गया। बैगन के भुरते और दही के साथ बच्चों ने बड़े आनन्द के साथ भुना हुआ 'हुरडा' (हरे दाने) खाया। बच्चों के पालकों ने भुट्टे भून देने में शिक्षकों को मदद दी।

सहभोज—हफ्ते में एक दिन स्कूल में बच्चों का सहभोज रखा गया। बच्चे अपना भोजन घर से ले आते और सब मिलकर भोजन करते। बच्चे दो बार कच्चा सामान लाये। उनकी माताओं ने रसोई बनायी और बच्चों को परोसा। बच्चों के पिताओं ने पानी लाने, बर्तन माँजने आदि कामों में मदद दी। सहभोज के जरिये बच्चों में भ्रातृत्व की भावना का विकास करने की दृष्टि रखी गयी है।

स्कूल का बजट—दर्ज संख्या औसत ४५·७, हाजिरी ३१·४, नाश्ता हाजिरी ३६·२, पढ़ाई के दिन २३३।

दूध	२५४।।–)।।	सरंजाम मरम्मत	२५–)।।
फल, हरीभाजी, नीरा आदि	१२।।–)।।	स्टेशनरी	२।=)
नारियल का तेल	२।)	शिक्षक वेतन	६००)
साबुन	।।–)।।		

कुल ८९७।) रुपये

यहाँ जो नाश्ता दूध और भोजन के साथ हरी भाजी, टमाटर, गाजर, प्याज, धनिया या फल के लिए रुपया दिया जाता है, उसके बारे में थोड़ा स्पष्टीकरण करना जरूरी है—

देहातियों के भोजन में संतुलित आहार की दृष्टि से फल या हरी भाजी आवश्यक है। लेकिन ज्यादातर लोगों को वह नहीं मिलती। खासकर बच्चों को तो वह मिलना आवश्यक है ही। इस भोजन-पूर्ति का जब तक हल नहीं होता, तब तक बच्चों के समग्र विकास की हमारी बात अधूरी रह जाती है। चाहे वह घर से पूरी हो या स्कूल से—इसी उद्देश्य को सामने रखकर हमने बच्चों को नाश्ता दिया।

वस्तुतः दूध का पूरा खर्च गाँववालों को करना चाहिए। हम लोगों को थोड़ा समझायें और लोग समझें, तो उनके लिए यह कठिन नहीं होता। आर्थिक दृष्टि से सेवाग्राम खूब गिरी हुई बस्ती है। यहाँ के देवस्थान के नाम गाय थी। उसे पञ्च लोगों ने इस साल बच्चों के दूध के प्रबन्ध के लिए शाला के सुपुर्द कर दिया। इससे दूध खर्च में मदद पहुँची। वैसे ही अन्य दो परिवार-वालों ने दो गायें, एक गाँव के और दूसरी नजदीक के ही देहात के ब्राह्मण को दान के रूप में भेंट दी। अगर वे दोनों परिवार-वाले हमारे बाल-गोपाल की जरूरतों को समझते, तो सालभर के दूध के खर्च का सवाल हल हो जाता। इस तरह जरूरत के मुताबिक स्कूल को गाय मिले, शाला की ओर से उसका पालन हो, गाँववाले कर्तव्य के रूप में उसके चारे-दाने का प्रबन्ध करें, तो गाँव के बच्चों के दूध का बड़े-से-बड़ा सवाल हल हो जायगा। मुझे आशा है, यदि दूसरे देहातों में इनके बारे में थोड़ी कोशिश की जाय, तो बच्चों के शरीर-विकास और आरोग्य-वर्धन में काफी तेजी से परिवर्तन होगा। ...

परिशिष्ट : १

पालकों के शिक्षक बालक

क्रम	बालक का नाम	उम्र	पालकों से बालकों का संवाद	प्रसंग
१.	नारायण	४॥	दादी, मुझे टट्टी के लिए दूर ले चलो।	दादी सबेरे घर के पास ही टट्टी बैठना चाहती है।
२.	परशुराम	४।	माँ, मुझे नहला दो।	माँ कहती है, बच्चा रोज नहलाने को तंग करता है।
३.	रुखमा	४।	माँ, मेरे बाल बना दे।	माँ का कहना है कि रोज बाल बनाने को तंग करती है।
४.	जानराव	४॥।	पिताजी, मेरे बाल बिल्कुल काट दो।	पिता अंग्रेजी बाल कटवाना चाहता है।
५.	विजय	५।	पिताजी, मेरा नाम स्कूल में लिखा दो।	इच्छा न होने पर भी बच्चे की जिद पर दाखिल कराया।
६.	प्रभाकर	५	माँ, मेरे कपड़े धो दो।	बच्चा कपड़े धोने को रोता है।
७.	सुशीला	३।	माँ, मुझे स्कूल पहुँचा दे।	माँ और दादी को स्कूल पहुँचाने को तंग करती है।
८.	सब बच्चे	—	हम गुब्बारे न लेंगे।	गुब्बारे बाहर से आते और जल्दी टूटते हैं। टुकड़े गले में फँस जाते हैं।

परिशिष्ट : २

बच्चे का घर

नाम—अनसूया तुकाराम—उम्र ६॥ वर्ष

७७६ चौकोर फुट की झोपड़ी है। दीवाल टाटी की है। छत खपरैल की और दरवाजा एक है। रसोईघर, कोठार तथा सोने की जगह, सब इसीमें है। स्नान के लिए आँगन में पत्थर और गन्दा पानी निकालने के लिए सोख पिट्स है। घर लीप-पोतकर साफ रखते हैं। घर के दोनों तरफ खुली जगह है और हवा तथा प्रकाश भरपूर है। मुर्गी रखने का झाबा भी है। घर में तीन आदमी हैं—माँ, बाप और लड़की। बाप आश्रम में काम करने जाता है। माँ आश्रम में काम पर जाती है। शाम को ६ से सवेरे ८ बजे तक और दिन में १२ से २ बजे तक घर में रहते हैं। माँ-बाप, दोनों मजदूर हैं।

खुराक—जवारी की रोटी, दाल, भाजी और अलसी का तेल।

परिशिष्ट : ३

बच्चों की तालीम और सयानों की तालीम

बच्चा चलने-फिरने लगता है, तो पूर्व-बुनियादी शाला में जाना शुरू होता है। तब से पूर्व-बुनियादी शाला के शिक्षक और बच्चे के माँ-बाप, दोनों के सहयोग से ही उसका विकास हो सकता है। इसमें बच्चों और बड़ों की तालीम साथ-साथ चलती है।

शिक्षक का समय बच्चों के घर और शाला में बँटा रहता है।

परिशिष्ट : ४

बाल-शिक्षा के साथ प्रौढ़-शिक्षा

शिक्षक के लिए बच्चा ही प्रौढ़-शिक्षा की कुंजी है। नीचे लिखी बातों पर बच्चों के द्वारा उनके माँ-बाप से मुझे चर्चा करने और साथ काम करके सीखने का मौका मिला।

१. सफाई :—

(अ) निजी सफाई—बच्चों को समय पर पाखाने भेजना, हाथ-पैर, मुँह धोना, दाँत साफ करना; अन्य अंगों की सफाई, कपड़ा-सफाई की जरूरत; सादे देहाती साधनों का उपयोग।

(आ) आम सफाई—घर, कुँआ और इर्दगिर्द की सफाई।

२. स्वास्थ्य :—बच्चों की मामूली और छुआछूत की बीमारियाँ, घरेलू दवाइयाँ, दवाखाने में इलाज और जाँच।

३. खाना पीना :—बच्चे के लिए जरूरी खुराक, कितनी बार भोजन देना, भोजन सफाई, साफ पानी, बीमारियों में क्या देना और किस चीज से बचाना।

४. कपड़ा :—कपड़े की जरूरत। खादी ही क्यों ? बच्चों की मार्फत घर में चर्खा और खादी का प्रवेश।

५. स्कूल भेजना :—नियमित रूप से स्कूल भेजना। क्यों ?

इस काम के लिए रोज सुबह स्कूल के समय से पहले एक-एक घंटा दिया गया। शिक्षक का सच्चा समाज-शिक्षण इसी समय होता है।

परिशिष्ट : ५

बच्चों का स्कूल

बच्चों का स्कूल जुलाई '४५ में बनवाया गया। शिक्षक और बच्चों ने जितनी हो सकी, मदद दी।

मुख्य भाग :—खेत की खुली जगह १८'×१४'
साधनों की जगह १०'×५'
सफाई की जगह और बगीचा १८'×१२'

पाखाना, पेशाबघर, खेत का मैदान और खुली घसरंडी आदि खेत के साधन बाहर हैं। दीवाल चटाई की; ४ फुट पर बाँस की जाली है। छत खपरैल की है। बाँस व चटाई की ५ खिड़कियाँ हैं।

फर्श कच्चा है। केवल रसोई और पानी की जगह पत्थर की है। सामान रखने के लिए बाँस की चाँड़।

३७२ रुपये खर्च हुए हैं।

यह आदर्श मकान नहीं है; परिस्थिति के कारण काम चलाने की दृष्टि से इसे बनाना पड़ा। आदर्श स्कूल में २० बच्चों के पीछे ५०० से ७५० चौकोर फुट जगह चाहिए।

परिशिष्ट : ६

प्रगति-पत्र का नमूना

नाम.......... उम्र..................

हाजिरी.......... सामान्य आरोग्य और

शारीरिक हलचल—शरीर-विकास-वजन जुलाई '४७ से मार्च '४८ तक...... पौण्ड बढ़ा।

......इंच ऊँचाई बढ़ी।......इंच छाती बढ़ी।

आरोग्य—पहले की शिकायत थी। अब अच्छा है। फरवरी माह में बुखार आया था।

रोग-निवारण के लिए अगस्त '४७ में हैजे का और फरवरी '४८ में चेचक का टीका दिया गया। आँखों में दवा डाली गयी।

साधन—कमरे में रखे साधनों की पूरी जानकारी है। उपयोग करना जानता है।

विषय-ज्ञान—

भाषा—आत्मप्रकटन के लिए शब्द का ठीक उपयोग करना जानता है। शब्द-संग्रह बढ़ा। गाने गाता है। कहानी कहता है।

गणित—उम्र के अनुसार जीवन में जरूरी गणित का ज्ञान है। छोटा-बड़ा, लंबा-चौड़ा, हलका-भारी, कम-अधिक, ऊँचा और आकार का ज्ञान है। ३० तक बच्चे या चीजें गिन लेता है।

क्रिया-ज्ञान—शरीर-सफाई, कपड़े की सफाई, शाला-सफाई—इन क्रियाओं का ज्ञान है। कपास साफ करना, सलाई पटरी से ओटाई करना और तकली पर कातना जानता है। बगीचे के काम में कुदाली और खुरपी का ठीक उपयोग करता है।

सब क्रिया और उसके साधन के उपयोग का निरीक्षण करता है। स्पर्श से उसे समझता है और आत्मप्रकटन के बाद प्रत्येक क्रिया करता है।

कला—हस्त-कौशल्य—चित्र बनाना—रंग और कूँची से कागज पर चित्र बनाता है, मिट्टी तैयार करके चीजें बनाता है।

संगीत—गाना सुनना पसंद करता है। ताल-ज्ञान है। सादे भजन सुर से गा सकता है।

विशेष—समाज और सृष्टिविषयक—समाज में किस तरह से रहना चाहिए, इसे समझता है। बड़ों का आदर करना जानता है।

सृष्टिविषयक परिवर्तनों को समझने की जिज्ञासा है।

बौद्धिक विकास—

एकाग्रता है। जिज्ञासा-वृत्ति जाग्रत है। काम करने का महत्त्व जानता है। काम की रुचि है। आकलन-शक्ति बढ़ी। स्मरण-शक्ति बढ़ी। मनन-शक्ति का विकास हुआ।

सर्वांगीण विकास—

आदतें—शरीरिक—शरीर-सफाई और कपड़े की सफाई में अभी जितनी चाहिए, उतनी प्रगति नहीं है। माँ-बाप का इस तरफ ध्यान नहीं रहा।

बौद्धिक—और मानसिक—

निरीक्षण-शक्ति, कल्पना-शक्ति आत्मप्रकटन-शक्ति, चपलता, उत्साह और आज्ञा-पालन, आदतों के साथ विकास हुआ।

सामाजिक व्यवहार और सभ्यता—अच्छी है।

खास बात—ओटाई, चित्रकला, बागवानी एकाग्रता से करता है। सरदार बनने की वृत्ति है।

खेल में विध्वंसक वृत्ति नहीं है। दूसरों के साथ मिलकर काम करने और खेलने की वृत्ति है। स्पष्ट वक्ता है। गम्भीर है।

बाल-शिक्षा

१. बालकों की शिक्षा का श्रीगणेश अक्षर-ज्ञान से नहीं, सफाई की शिक्षा से होना चाहिए।

२. शिक्षक (बल्कि शिक्षिका) को चाहिए कि बालक को क-का-कि-की सिखाने की जल्दी न करे, बल्कि उसे अपने हाथ, पाँव, नाक, कान, आँख, दाँत आदि साफ करना, नहाना, कपड़े धोना आदि सिखावे।

३. इसके बाद बच्चे के हाथ में तकली-चरखा देकर कातने तक की सब क्रियाएँ सिखा दे।

४. शिक्षक (या शिक्षिका) बालक को कहानियों द्वारा इतिहास-भूगोल, कथाओं और भजनों द्वारा धर्म, प्रत्यक्ष अवलोकन द्वारा पदार्थ विज्ञान, वनस्पतियों, भूमि तथा आकाश का ज्ञान और प्रत्यक्ष पदार्थों से गणित सिखा दे।

५. अक्षर सिखाने से पहले बालक को चित्र और अक्षरों की आकृतियाँ बनाना तथा विचारों को चित्रों के द्वारा प्रदर्शित करना सिखाये।

६. भजन, श्लोक, कविताएँ बालक को कंठाग्र कराके उच्चारण-शुद्धि कराये। नाना प्रकार का साहित्य उसे कण्ठ करा दे।

७. इसके बाद सुन्दर आकृतिवाले और स्पष्ट पढ़े जा सकनेवाले अक्षर लिखना सिखाये।

—गांधीजी

<u>आठ आना</u>